श्री आदिनाथ दिगंबर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, सोनगढ़
शुक्रवार, 19 जनवरी 2024 से शुक्रवार, 26 जनवरी 2024 तक

सोनगढ़ प्रतिष्ठा

महोत्सव तत्त्वचर्चा

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुंबई

अनुक्रमाणिका

क्रं.	दिन	दिनांक	पृष्ठ
१	प्रतिष्ठा पूर्व (सायं)	१८-०१-२०२४	३
२	ट्रेक - २६०	१९-०१-२०२४	७
३	धर्म ध्वजारोहण (सायं)	१९-०१-२०२४	१३
४	ट्रेक - १९२	२०-०१-२०२४	२०
५	गर्भ कल्याणक पूर्व क्रिया (सायं)	२०-०१-२०२४	२७
६	ट्रेक - २४३	२१-०१-२०२४	३२
७	गर्भ कल्याणक (सायं)	२१-०१-२०२४	३८
८	ट्रेक - २४२	२२-०१-२०२४	४४
९	जन्म कल्याणक (सायं)	२२-०१-२०२४	५१
१०	ट्रेक - ७१	२३-०१-२०२४	५६
११	तप कल्याणक (सायं)	२३-०१-२०२४	६३
१२	ट्रेक - तत्वचर्चा सी. डी. - २ ब	२४-०१-२०२४	६९
१३	ज्ञान कल्याणक (सायं)	२४-०१-२०२४	७८
१४	ट्रेक - १४९	२५-०१-२०२४	८४
१५	मोक्ष कल्याणक (सायं)	२५-०१-२०२४	९०
१६	ट्रेक - ७७	२६-०१-२०२४	९६

प्रतिष्ठा पूर्व
ता. १८-१-२०२४

मंगलाचरण

चत्तारि मंगलं, अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलीपण्णत्तो धम्मो मंगलं

चत्तारि लोगुत्तमा, अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा,

केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

चत्तारि शरणं पव्वज्जामि, अरहंते शरणं पव्वज्जामि, सिद्धे शरणं पव्वज्जामि,

साहू शरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं शरणं पव्वज्जामि ।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी ते तरे,

सकल कर्मनो आणे अंत, मोक्ष तणा सुख लहे अनंत,

भाव धरीने जे गुण गाय, ते जीव तरीने मुक्ति जाय,

संसारमांहि शरण चार, अवर शरण न कोई, जे नर-नारी आदरे, तेने अक्षय अविचल पद होय ।

अंगूठे अमृत वसे, लब्धि तणा भंडार, ज्यां गुरु गौतमने समरिये तो सदाय मन वांछित फल दातार।

श्रोता : आपने तीन बातें की। एक तो पूर्व का आश्रय भी चाहिये, दूसरा ध्येय उसका उत्तम आत्मा का चाहिये और पुण्यभाव में पुण्यभाव आता है, यदि वे नहीं आते है ऐसा माने तो भी मिथ्या है (तो भी मिथ्या है)। और उसमें ही रुक जाय (ठहर जाय) तब भी उसका कल्याण होता नहीं है।

पूज्य बहिनश्री : कल्याण होता नहीं है। शुभभाव आते है लेकिन उसमें ठहर जाय तो उसमें उसका कल्याण होता नहीं है। गुरु कौन सा मार्ग बतलाते है, इस प्रकार गुरु का आश्रय आना चाहिये। स्वयं की मति कल्पना से निर्णय करे वह भी यथार्थ नहीं है। किन्तु तत्त्व के निर्णय बिना आगे बढ़ सकता नहीं है। (श्रोता : जी हां। बहुत सुंदर)

श्रोता : हे कृपालु माता ! पूर्व के पुण्य से मनुष्य पर्याय मिली, जैनधर्म मिला, आर्यदेश मिला, आर्यकुल मिला, भावि तीर्थंकर और गणधर का संयोग मिला। अब तो हमारी नाव किनारा देख रही है, तो हे माताजी ! हमारा पुरुषार्थ के भीतर ऐसा वेग मिले, ऐसा मंत्र प्रदान करें कि जिससे हम संसार-समुद्र से पार उतर सके।

पूज्य बहिनश्री : मंत्र तो गुरुदेवश्री ने बहुत दिये है कि तू आत्मा भगवान है उसकी पहिचान कर। यह करने का है। तू स्वयं ही भगवान है, तू आत्मा अनादिकाल से है। तेरे अंतर में अशुद्धता का कोई अंश प्रवेश हुआ नहीं है। तू द्रव्य स्वभाव से शुद्ध आत्मा है, उसकी पहिचान कर। करने का तो यह है यह द्रव्य क्या है और पर्याय क्या है? यह शुद्धता किसकी और यह अशुद्धता क्या है? उसको अंतर में पहिचान ने का उद्यम कर। यदि पुरुषार्थ करेगा तो अवश्य जानने में आयेगा।

स्वयं को अंतर में इतनी लगनी लगनी चाहिये, इतनी जिज्ञासा होनी चाहिये। अंतर में पुरुषार्थ करे तो अवश्य होगा। द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप को पहिचाने तो अवश्य होगा। गुरुदेवश्री ने तो स्पष्ट मंत्र बतलाया है तू भगवान है, तू ज्ञायक है, तू शुद्ध है उसकी तू पहिचान कर। यह बाह्य में रुक रहा है, यह शुभाशुभभावों तेरा वास्तविक स्वरूप नहीं है। तू जाननहार है एक (समय) की पर्यायमात्र में मत रुकना, तू तो द्रव्य शाश्वत है।

श्रोता : यह ही महामंत्र है ?

पूज्य बहिनश्री : बस यह ही महान मंत्र है। तुम आत्मा भगवान हो, तुम्हारा द्रव्य शाश्वत अनादि अनंत जैसा है वैसा ही है, पर्याय में अशुद्धता है उसको पहिचानकर और आप अपने द्रव्य पर दृष्टि कीजिये। पश्चात् साधना की पर्याय किस प्रकार प्रकट हों उस सम्बन्धित सभी प्रकार से विचार किजीये। द्रव्य पर दृष्टि कर और अशुद्धता जो पर्याय में है उसे टालने के लिये आप पुरुषार्थ कीजिये। द्रव्य पर दृष्टि कर, भेदज्ञान कर, यथार्थ श्रद्धा, ज्ञान और कुछ अंश स्वरूप में ठहर जा। बस यह ही करने का है।

श्रोता : माताजी !..... आत्मा अचिंत्य, अचिंत्य शक्ति का स्वामी स्वयमेव देव है, जिस क्षण जागृत हुआ उसी क्षण आनंद स्वरूप जागृत ज्योति अनुभव में आती है कि बाहर आये तब आनंद का पता चलता है ?

पूज्य बहिनश्री : आत्मा अचिंत्य शक्तिवंत जो चिंतवन में न आ सके ऐसा दिव्यमूर्ति देव है। ऐसा अनंत शक्ति से परिपूर्ण आत्मा है। वह जिस क्षण अंतर से जागृत हुआ उस विकल्प से छूटकर अंतर से आत्मा जो प्रकट होता है उसकी स्वानुभूति हो, उस समय जिसको वेदन में आये वह ही क्षण उसको जानता है। बाहर आकर के जानने में आये ऐसा कुछ होता नहीं है। वह ज्ञान कहाँ गया है। ज्ञान स्वयं विद्यमान ही है। ज्ञान का ऐसा स्वभाव है कि ज्ञान स्वयं को जानता है। वह ज्ञान द्रव्य-गुण-पर्याय सभी को जानता है। ऐसा किसी भी बात का ज्ञान यहाँ शून्य नहीं हुआ है कि आनंद को जाने ही नहीं। स्वयं को जो वेदन में आता है उन सभी को जानता ही है वह आनंदगुण, जो अनुपम आत्मा में प्रकट होता है आनंदगुण और अनंत शक्तिओं से परिपूर्ण आत्मा, अनंत सामर्थ्य से भरपूर आत्मा उसको जो वेदन में आता है उन सभी को उस समय में जानता है और वेदन में आता है। त्वरित बाहर आकर जाने ऐसा अर्थ नहीं है। वह ज्ञान उसका स्व-परप्रकाशक ज्ञान है उसका यह ज्ञान नाश को प्राप्त नहीं होता है। अनूभूति में से बाहर आये अर्थात् बाह्य विकल्प का आश्रय मिले तो ज्ञान जाने ऐसा उसका अर्थ नहीं है। अनादि से जो स्वयं को भूल गया है और पर पदार्थ की ओर सब जानता है और राग-द्वेष एवं विकल्प के भाव वेदन में आते है उसको जानता है और स्वानुभूति होती है उसको न जाने वह ज्ञान किस प्रकार का होगा ?

स्वयं स्वानुभूति को जानता है। ऐसे विभावभावों को वेदन में आकर जानता है और स्वानुभूति को जाने नहीं। वह ज्ञान तो परिपूर्ण सामर्थ्य से भरा हुआ है। ज्ञान स्वभाव किसे कहते है ? सभी जाने उसे। स्वयं को जानता है वह स्वयं को स्वयं के वेदन को आनंद गुण को, सर्व गुणों को स्वयं स्वयं को जाने, अन्य गुण को जाने, पर्याय की परिणति को जाने, सभी को जाने, उपयोग बाह्य और बाह्य पदार्थ को जानता नहीं है। स्वयं को स्वानुभूति में सब कुछ जानता है, उसी समय ही जानता है पश्चात् जानता है ऐसा नहीं है। उसका वेदन हो गया और बाद में उसे मालूम हुआ कि मुझे यह वेदन हुआ ऐसा नहीं है। उसी समय जो जाना था वह बाहर आकर उसको याद रहता है इसलिये उसी समय उसको वेदन में आता है। निरंतर निर्झरीत आस्वाद में तो मुझे सुंदर जो आनंद ऐसा स्वसंवेदन प्रकट होता है वह स्वसंवेदन उसी समय अनुभव में आता है। पश्चात् उसे अनुभव, पश्चात् उसे जाने ऐसा ज्ञान नहीं है। ज्ञान का स्वभाव अर्थात् क्या? संपूर्ण लोकालोक को जाननेवाला आत्मा उसका ज्ञान स्वभाव उसका नाश हो गया है ? नाश हुआ नहीं है। स्वानुभूति में सब कुछ जानता है मात्र प्रत्यक्ष-परोक्ष का भेद है। परोक्ष अर्थात् अनुभव तो उसे प्रत्यक्ष है। अनुभव अपेक्षा से प्रत्यक्ष है। उस आनंद को अपूर्व, अनुपम, प्रत्यक्ष जानता है। तेरा अचिंत्य शक्ति से परिपूर्ण आत्मा चिंतवन में नहीं आ सकता है, वाणी से कहा नहीं जा सकता वह तो मात्र वेदन में आता है। उस वेदन में जानने में आता है।

जाननेवाला पुरुषार्थ किसके लिये है? आत्मा के सुख को आत्मा की स्वानुभूति के लिये ही जो अनंतकाल से आत्मा ख्याल में आया नहीं है, अनंत सामर्थ्य से परिपूर्ण जो चाहिये उसे आत्मा में से मिले ऐसा जो आत्मा अनंत स्वानुभूति में आता है और आनंद आच्छादित रहे और सब कुछ नीकल जाय और शून्य हो जाय ऐसा होता नहीं है। जो आत्मा स्वयं की अनंत शक्तिओं से परिपूर्ण और अनेक प्रकार के स्वभावों से परिपूर्ण है उसके वेदन को उसी क्षण वेदन में लेता है उसे आश्चर्यकारी आत्मा, चमत्कारी आत्मा उसी क्षण वेदन में आता है। गुरुदेवश्री के व्याख्यान में बारम्बार आता था। गुरुदेवश्री भी कहते थे, शास्त्रों में भी आता हैं। वेदन में आये ऐसा यह आत्मा है।

पूज्य बहिनश्री : भव का अभाव हो उसका मार्ग बतलाया है। गुरुदेवश्री के पास सभी ने बहुत कुछ सुना है। अनंता जन्म-मरण किये हैं। आकाश के एक प्रदेश प्रदेश में अनंतबार जन्म-मरण किये। इस जगत के जितने पुदगल परमाणु हैं उन सभी को अनंतबार ग्रहण किया और त्याग किया, शरीर को भी। ऐसे उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल के अनंता कालचक्र में भ्रमण किया है। ऐसे भाव अनेक प्रकार के किये है। ऐसे अनंता भव जीवने किये हैं। उसमें यह अमूल्य मनुष्यभव मिला, उसमें ऐसे गुरुदेवश्री मिले वह तो महा भाग्यवान है और भव का अभाव हो ऐसा मार्ग दर्शाया और ऐसे गुरुदेवश्री की वाणी का श्रवण करने का योग मिला वह तो महाभाग्य है। अब तो यह मनुष्यजन्म पाप्त करके जन्म-मरण का अभाव किस प्रकार हो वह ही करने जैसा है। भव का अभाव हो और भव मिले ही नहीं ऐसा गुरुदेवश्री ने मार्ग दर्शाया है। सभी कोई क्रिया में धर्म के कोई अल्प शुभभाव करके धर्म हो गया ऐसा मान लेते थे। यहाँ गुरुदेवश्री ने अंतर शुद्धात्मा में धर्म है उसे बताया है, सभी से पृथक् शुभाशुभभाव भी स्वयं का स्वभाव नहीं और उससे भी आत्मा अलग है। यह शरीर से भी पृथक्, शुभाशुभभाव भी स्वयं का स्वभाव नहीं है। उससे भी अलग यह मार्ग गुरुदेवश्री ने दर्शाया है यह मार्ग ग्रहण कर लेने जैसा है। ज्ञायक आत्मा को पहिचानने जैसा है।आयुष्य तो पूर्ण होता है। जिस का जन्म है उसकी आयु पूर्ण होती ही है। देवों की आयु सागरोपम फिर भी पूर्ण होती है तो मनुष्यजन्म का क्या हिसाब में है ! देवों की आयु सागरोपम की होती है, तदपि आयु पूर्ण होती है। ऐसे अनंते कालचक्र चले गये, अनंता देव के भव किये, यह जीव ने अनंता तिर्यंचों

के, अनंता मनुष्यों के और नरक के ऐसे अनंतानंत भवों किये उसमें ऐसे पंचमकाल में महान पुण्योदय, महाभाग्य से गुरुदेवश्री हमें मिले।

श्रोता : .....

पूज्य बहिनश्री : महाभाग्य से तो मिले ही। यथार्थ मार्ग ग्रहण करके, आत्म कल्याण कैसे हो और भव का अभाव हो यह ही कर लेने जैसा है। संसार तो ऐसा ही है। क्षण-क्षण में पलट जाय ऐसा यह संसार है। यह मनुष्यदेह भी ऐसा ही है। चक्रवर्ती, तीर्थंकरादि सभी भव्य जी इस संसार का स्वरूप को देखकर दीक्षा ग्रहण कर लेते थे। जैसे ओंस की बिंदु क्षण में विलीन हो जाती है वैसे आयुष्य भी ऐसा ही है क्षण में विलीन हो जाता है। वह आत्मा का स्वरूप की पहिचान किस प्रकार करें, ज्ञायक को कैसे पहिचाने, वह अनुभव किस प्रकार अंतर से प्रकट हो, सम्यग्दर्शन सहज ही होता है, वह मार्ग गुरुदेवश्री ने बतलाया है उस पर ही चलने जैसा है। अनंतकाल में जीव को सब कुछ प्राप्त हुआ है, एक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति जो अपूर्व (दुर्लभ) है वह नहीं हुई है। जिनवरस्वामी मिले, मिले नहीं है ऐसा न कहकर मिले लेकिन स्वयं ने पहिचाना नहीं है। वह ही दुर्लभ और यह सम्यग्दर्शन दुर्लभ है।

सम्यग्दर्शन प्राप्त करे तो भव का अभाव होगा, बाह्य के सभी कार्य जीव ने किये लेकिन अंतर में आत्मा को पहिचाना नहीं। आप सभी को घर में अच्छा रुचि है। वह ही करने जैसा है। वांचन, विचार आदि आत्मा का स्वरूप किस प्रकार पहिचाने, आत्मा की रुचि की वृद्धि किस प्रकार हो, सभी को यह करने जैसा है। चक्रवर्ती और राजाओं सभी आत्मा की साधना करते थे, गृहस्थाश्रम में भी करते थे पश्चात् केवलज्ञान व पूर्णता की पूर्ण साधना हेतु दीक्षा ग्रहण कर लेते थे।

श्रोता : सर्व प्रथम किस प्रकार करना ?

पूज्य बहिनश्री : प्रथम आत्मा का निर्णय करना। प्रथम विचार करके, आत्मा क्या है द्रव्य क्या है, गुण क्या और पर्यायें क्यां ? यह सभी विचार करके नक्की करे कि में तो जाननहार ज्ञायक आत्मा हूँ, ऐसा निश्चित् करे, प्रतीत करे, निर्णय करे, विभाव का रस कम हो कि वास्तविक सारभूत आत्मा ही है। यह विकल्पों में कोई सार नहीं है, यह शरीर तो जड़ है, यह मेरा आत्मा महिमावंत है, बाह्य कहीं पर महिमा नहीं है। सभी रस उड़ जाय, बाह्यमें से रस उड़ जाय, अंतर में चैतन्य का रस जागृत हो अर्थात् विरक्ति अंतर में विरक्ति आये। बाह्य से सब कुछ छूट जाय, ऐसा नहीं अंदर से रस कम हो। आत्मा को पहिचानने का प्रयत्न करे आत्मा की महिमा आये। देव-गुरु-शास्त्र की महिमा भी आये किन्तु आत्मा की महिमा अधिक आये। जैसा भगवान का आत्मा, गुरु का आत्मा ऐसा ही मेरा आत्मा है, इस प्रकार महिमा आये और आत्मा को अंदर से पहिचाने, लगनी लगे कि मैं कौन हूँ, मेरा स्वरूप क्या है? मैं अनादि से ऐसा हूँ, यह क्या हो रहा है? यह क्या परिग्रह है ? यह विकल्प क्या है ? मैं आत्मा कौन हूँ ? ऐसा दृढ़ निश्चय करे, शास्त्रों में इस प्रकार आता है। गुरुदेवश्री ने कहा कि आत्मा पृथक् है उसका भेदज्ञान कर। उसे पहिचान ने का प्रयत्न कर, निर्णय करने का प्रयत्न कर।

प्रशममूर्ति भगवती मात की जय हो।

करूणामूर्ति पूज्य भगवती मात की जय हो.....

ट्रेक-२६०

मुमुक्षु :- नमस्कार मंत्र बोलते हैं या जब ध्यान करते हैं, उस वक्त वास्तवमें तो ऐसा विचार करना चाहिये कि भगवानका स्वरूप कैसा है, उनको मैं नमस्कार करता हूँ? नव नमस्कार मंत्र बोलते समय अथवा ... बोलते समय, एक-दो बार ऐसा ख्याल आता है, बाकी सब तो ऐसे चला जाता है।

समाधान :- शब्द बोल लेता है। शुभभाव-से भगवान... णमो अरहंताणं, भगवानको नमस्कार करता हूँ, सिद्ध भगवानको नमस्कार करता हूँ। परन्तु भगवान कौन और..

मुमुक्षु :- वह सब हर वक्त आना चाहिये?

समाधान :- हर समय आना चाहिये ऐसा नहीं परन्तु विचार-से समझना चाहिये कि भगवान किसे कहते हैं? सिद्ध भगवान, आचार्य भगवान, उपाध्याय भगवान, साधु भगवान। जो साधना करे सो साधु। आचार्य छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं, सिद्ध भगवानने पूर्ण स्वरूप प्राप्त किया, भगवानने केवलज्ञान प्राप्त किया। उसका स्वरूप तो समझना चाहिये।

हर बार विचार आये ऐसा नहीं, परन्तु उसका स्वरूप समझमें तो लेना चाहिये न। तो उसे सहजपने ख्याल आवे, णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं यानी भगवान कैसे है, वह सहज उसे ख्यालमें आये कि भगवान ऐसे होते हैं। ऐसा विचार-से समझा हो तो।

ओघे ओघे नहीं समझकर, विचारपूर्वक समझे कि भगवान किसे कहते हैं। हर बार बोलते समय विचार करता रहे ऐसा नहीं, परन्तु उनका स्वरूप तो स्वयंको समझ लेना चाहिये। हर बार एकदम बोले, परन्तु स्वरूप तो ख्यालमें लेना चाहिये। हर बार विचार करे ऐसा नहीं।

अन्दर पूर्ण स्वरूपमें जम गये हैं। सहज स्वरूपमें लोकालोकको जानने नहीं जाते, सहज ज्ञात हो जाता है। ऐसी कोई ज्ञानकी अपूर्व शक्ति, आत्माकी अपूर्व शक्ति प्रगट हुयी है। भगवानका स्वरूप विचार करके जाने। अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, चारित्र अनन्त भगवानको प्रगट हुआ।

(आत्माका स्वरूप) ऐसा भगवानका, भगवानका स्वरूप ऐसा आत्माका स्वरूप

है। सिद्ध भगवान तो पूर्ण हो गये। आचार्य भगवान तो साधना (करते हुए) छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं, वे सब मुनिराज (हैं)।

... ऐसा कुछ नहीं है। एक जातकी अन्दर भावना है, उस जातकी परिणति, एक जातका अभ्यास होकर अन्दर भावना रहती है स्वयंको कि ...

मुमुक्षु :- .. और पुरुषार्थको कोई सम्बन्ध है?

समाधान :- व्यवहार-से सम्बन्ध कहनेमें आये। ऐसा कहनेमें आये कि पूर्वके संस्कारीको पुरुषार्थ जल्दी उठता है। ऐसे व्यवहार सम्बन्ध कहनेमें आता है। बाकी तो वर्तमान पुरुषार्थ करे तब होता है। बहुतोंको संस्कार हो तो भी पुरुषार्थ तो वर्तमानमें ही करना पड़ता है। पुरुषार्थ करे तब संस्कारको कारण कहनेमें आता है।

पूर्वमें जो कोई संस्कार डाले हो, उसकी योग्यता पड़ी हो। फिर वर्तमानमें स्वयं पुरुषार्थ करे तो उसे कारण होता है। पुरुषार्थ न करे तो कारण नहीं होता। वर्तमान पुरुषार्थ तो नया ही करना पड़ता है।

मुमुक्षु :- संस्कार डालने-से उसे क्या लाभ हुआ? एक जीव संस्कार बोता है और एक जीव संस्कार बोता है, उसमें उसे यदि पुरुषार्थ-से ही प्राप्त होता हो तो...?

समाधान :- संस्कार उसे पुरुषार्थ उत्पन्न होनेका कारण बनता है। वह लाभ है। लेकिन उसे कारण कब कहें? कि कार्य आवे तो। यथार्थ रीत-से अन्दर वह कार्य हो तो कार्य आवे और पुरुषार्थ उत्पन्न हो। परन्तु वह कारण अन्दर यथार्थ होना चाहिये। यथार्थ रीत-से हो तो पुरुषार्थ उत्पन्न होता है, ऐसा सम्बन्ध है।

पुरुषार्थ उत्पन्न हो वह पुरुषार्थ स्वतंत्र है और संस्कार भी स्वतंत्र है। पुरुषार्थ उत्पन्न हो तो उसे कारण कहनेमें आये। उसे कारण बनता है, इसलिये तू संस्कार डाल, (ऐसा कहते हैं)। वह कहीं पुरुषार्थ उत्पन्न नहीं करवा देता। स्वयं पुरुषार्थ करे तो उसे कारण होता है।

मुमुक्षु :- ऐसा भी आता है कि जोरदार संस्कार पड़े होंगे तो इस भवमें कार्य नहीं होगा तो दूसरे भवमें कार्य हुए बिना नहीं रहेगा।

समाधान :- यथार्थ कारण हो तो कार्य आता ही है। ऐसे। कारण कैसा, वह स्वयंको समझना है। कारण यथार्थ हो तो कार्य आता ही है। तो पुरुषार्थ उत्पन्न होगा ही। कारण तेरा यथार्थ होगा तो भविष्यमें पुरुषार्थ उत्पन्न होगा। परन्तु पुरुषार्थ उत्पन्न करनेवालेको ऐसी भावना होनी चाहिये कि मैं पुरुषार्थ उत्पन्न करुँ। मुझे संस्कार होंगे तो पुरुषार्थ उत्पन्न होगा, ऐसी यदि भावना रहती हो तो पुरुषार्थ उत्पन्न नहीं होता। पुरुषार्थ उत्पन्न करनेवालेको तो ऐसा ही होना चाहिये कि मैं पुरुषार्थ करुँ। तो उसे वह कारण बनता है। पुरुषार्थ करनेवालेको तो ऐसी ही भावना रहनी चाहिये कि मैं

पुरुषार्थ करुँ। मुझे संस्कार होंगे तो अपनेआप उत्पन्न होगा, ऐसी भावना नहीं होनी चाहिये।

उसके संस्कार यथार्थ कारणरूप हों तो उसे पुरुषार्थ उत्पन्न होता ही है। ऐसा एक सम्बन्ध होता है। परन्तु पुरुषार्थ करनेवालेको ऐसा नहीं होना चाहिये कि मुझे संस्कार होंगे तो पुरुषार्थ उत्पन्न होगा। यदि ऐसी भावना हो तो पुरुषार्थ उत्पन्न ही नहीं होता। भावना ऐसी होनी चाहिये कि मैं प्रयत्न करुँ। मैं ऐसा करुँ, ऐसे स्वयंको भावना रहे तो कारण-कार्यका सम्बन्ध होता है। स्वयंको ऐसी भावना होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- (इस भवमें) आत्माका अनुभव न हो तो संस्कार लेकर तो जायेंगे। तब ऐसा लगता है कि संस्कार और पुरुषार्थकी एक जात हो, ऐसा लगता है।

समाधान :- एक जात नहीं है। प्रयत्नमें उसे बहुत उलझन होती हो, प्रयत्न चलता नहीं हो.. पहले तो ऐसा होता है कि तू आखिर तक पहुँच जा। ऐसा तेरा प्रयत्न चलता हो तो तू प्रयत्न कर। परन्तु नहीं होता तो तू संस्कार तो डाल। परन्तु संस्कार यानी पुरुषार्थका सब कार्य संस्कारमें आ नहीं जाता।

यदि तू प्रतिक्रमण कर सकता है तो ध्यानमय करना। न कर सके तो श्रद्धा करना। ऐसे। तुझ-से बन सके तो आखिर तक ध्यान करके केवलज्ञान पर्यंत, मुनिदशा और केवलज्ञान प्रगट करना। परन्तु यदि नहीं होता है तो तू श्रद्धा कर, सम्यग्दर्शन प्राप्त कर। परन्तु सम्यग्दर्शन पर्यंत पहुँच न सके तो उसकी रुचि, भावना और संस्कार करना। परन्तु करनेका ध्येय तो, अपना प्रयत्न उत्पन्न हो तो पूरा करना।

आचार्य कहते हैं कि, तुझ-से बन सके तो पूर्ण करना। न बन सके और तुझे उलझन होती हो तो तू इतना तो करना। अंततः तू रुचिका बीज तो ऐसा बोना कि जो रुचि तुझे कारणरूप हो। ऐसी रुचि तो करना, न बन सके तो। उसमें रुचिमें सब आ नहीं जाता। तेरी अन्दर ऐसी गहरी भावना होगी तो भविष्यमें तुझे ऐसी भावना अन्दर-से उत्पन्न होगी और तुझे पुरुषार्थ बननेका (कारण होगा)।

परन्तु वहाँ भी तुझे ऐसा ही होना चाहिये कि मैं पुरुषार्थ करुँ। वहाँ भी ऐसा ही होता है कि भावना उत्पन्न हो तो पुरुषार्थ करुँ, अन्दर जाऊँ। अभी न होता हो तो अभ्यास करना। उसकी दृढ़ता करना। बारंबार उसका घोलन करना। मैं ज्ञायक हूँ। मैं यह नहीं हूँ। ये विभाव मेरा स्वभाव नहीं है। मेरा स्वभाव भिन्न है। बारंबार उसे तू दृढ़ करना। तेरी दृढ़ता होगी तो तुझे भविष्यमें, अन्दर वह दृढ़ता होगी तो तुझे स्फूरित हो जायगी, तो तुझे पुरुषार्थ होनेका कारण बनेगी। उसमें सब आ नहीं जाता।

मुमुक्षु :- .. निमित्त रूप-से संस्कारको लेना?

समाधान :- निमित्त रूप-से।

मुमुक्षु :- संस्कारको निरर्थक करनेवाला है,..

समाधान :- वह अपेक्षा अलग है। द्रव्य-से निरर्थक करनेवाला है। संस्कार सार्थक करे, द्रव्य अपेक्षा-से संस्कार निरर्थक है। वस्तुमें वह नहीं है। मूल स्वभाव... पर्यायकी बात है। पर्याय पलट जाती है, परन्तु व्यवहार यानी कुछ नहीं है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- तू पुरुषार्थ-से काम करे तो संस्कारको निमित्त कहें। ...

समाधान :- निगोदमें-से निकलकर तुरन्त वह होते हैं और फिर मनुष्य बनकर तुरन्त... उसमें संस्कार कहाँ थे? तेरा स्वभाव ज्ञायक है, वही तेरा संस्कार है। तेरा स्वभाव है वह। तेरा स्वभाव ही ज्ञायकरूप रहनेका है। तो ज्ञानस्वभावी है, वह तेरा ज्ञानस्वभाव ही तुझे तेरी परिणति ही ... तुझे यदि अंतरमें-से ऐसा होगा तो तेरा स्वभाव है वह स्वभाव ही संस्काररूप है।

तू चेतनता-से भरा है, कहीं जड़ तेरा स्वभाव नहीं है। चेतन तरफ तेरी परिणति, चेतनद्रव्य है वह तेरी परिणति, उसे तेरी ओर खींचेगी। तेरा स्वभाव है। द्रव्य ही पर्यायको प्रगट होनेका कारण बनता है। द्रव्य पर दृष्टि गयी। तेरी पर्याय यथार्थ सम्यक्रूप परिणमित हो जायेगी। तेरा स्वभाव ही सम्यक्रूप है। यथार्थ ज्ञानस्वभाव है। वह स्वभाव ही उसका कारण है। सीधी तरह-से द्रव्य ही उसका कारण बनता है।

संस्कार एक परिणति है। परिणति उसका कारण हो, वह व्यवहार हुआ। द्रव्य ही उसका मूल कारण, द्रव्य ही कारण है। निश्चय-से तेरा मूल स्वभाव ज्ञायक ही है, वह स्वभाव ही उसका कारण बनता है। निगोदमें-से निकलता है, वह उसका स्वभव है। वह स्वभाव नहीं है, मैं तो यह चैतन्य हूँ, यह मैं नहीं हूँ। स्वभाव पर दृष्टि गयी, वहाँ परिणति पलट जाती है। वहाँ पहले संस्कारको दृढ़ करना पड़ा या मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा अभ्यास करना पड़ा, ऐसा कुछ नहीं है। सब अभ्यास एकसाथ ही हो गया। मैं ज्ञायक ही हूँ, ऐसा एकदम जल्दी दृढ़ता हो गयी तो अंतर्मुहूर्तमें हो गया। और संस्कार अर्थात् बार-बार, बार-बार देर लगे, मन्द पुरुषार्थके कारण देर लगे, मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसी परिणति सहजरूप-से दृढ़ नहीं हुयी, इसलिये बार-बार, बार-बार अधिक काल अभ्यास किया, इसलिये उसे संस्कार कहा। उसमें तो अभ्यास करना कुछ रहा ही नहीं, तुरन्त एकदम पुरुषार्थ किया तो एकदम हो गया। उसमें संस्कार बीचमें लानेकी जरूरत नहीं पडती। मूल स्वभाव, ज्ञायक स्वभाव, अपना स्वभाव ही कारणरूप बनता है। फिर परिणतिके संस्कार करनेका बीचमें कोई अवकाश ही नहीं है। जिसका तीव्र पुरुषार्थ उत्पन्न हो, उसे कहीं बीचमें संस्कारकी जरूरत ही नहीं होती, द्रव्य ही उसका कारण बनता है।

मुमुक्षु :- उस अपेक्षा-से स्वभावको संस्कार निर्रथक करनेवाला कहा।

समाधान :- निरर्थकर करनेवाला, द्रव्य संस्कारको निरर्थक करनेवाला है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- संस्कार डाले। उसमें द्रव्य कारण बनता है और एकदम अंतरमें जाते हैं। निगोमें-से निकलकर मनुष्य होकर, तुरन्त मैं ज्ञायक स्वभाव ही हूँ, ऐसे अंतर्मुहूर्तमें प्राप्त कर लेते हैं। बीचमें संस्कारकी कोई जरूरत ही नहीं पड़ती।

मुमुक्षु :- वैसे जल्दी काम हो, उसका कोई रास्ता बताओ तो काम आये।

समाधान :- स्वयं जल्दी पुरुषार्थ करे तो जल्दी हो जाय। धीरे-धीरे अभ्यास करता रहे कि मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, उसके बजाय मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे एकदम दृढ़ता-से ... स्वयं एकदम विभाव-से छूटकर जाय तो जल्दी हो। पुरुषार्थ धीरे-धीरे करे इसलिये उसमें संस्कार बीचमें आते हैं। जल्दी करे तो बीचमें संस्कार आते ही नहीं। अभ्यास करे इसलिये संस्कार हुए। उसमें जल्दी किया। एकदम द्रव्य पर दृष्टि गयी और हो गया। कमर कसकर तैयार हुए हैं। प्रवचनसारमें (आता है)। ऐसे स्वयं तैयार होकर अंतरमें जाये तो एकदम हो जाता है।

मुमुक्षु :- प्रवचनसारमें (आता है), हमने कमर कसी है।

समाधान :- हाँ, कमर कसी है।

मुमुक्षु :- एक बार कहा था, मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा विश्वास ला तो लंबा काल नहीं लगता।

समाधान :- लंबा काल नहीं लगता। एकदम दृढ़ताके साथ। यदि विश्वासरूप-से परिणति एकदम दृढ़ हो जाय कि मैं ज्ञायक ही हूँ। विश्वास है ऐसी ही परिणति, मैं ज्ञायक हूँ, उसकी दृढ़ता हुयी। मोहग्रन्थिका मैंने घात कर दिया है। अंतरमें तुरन्त हो जाता है। मोहग्रन्थिका घात करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करके चतुर्थ कालमें कितने ही अंतरमें लीनता कर दी, तो एकदम सम्यग्दर्शनका कार्य लीनतारूप एकदम हो जाता है, जो जल्दी करता है उसे।

विभावके संस्कार भी चले आते हैं। आता है, क्रोधादि तारतम्यता सर्पादिक मांही। विभावका संस्कार होते हैं, वैसे यह स्वभाव तरफकी रुचिके संस्कार वह भी उसे पूर्व भवमें आते हैं। परन्तु वह पुरुषार्थ करे तब उसे कारणरूप कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- पुरुषार्थ करे उसे उपयोगी कहनेमें आये, न करे उसे..

समाधान :- पुरुषार्थ तीव्र हुआ और द्रव्य पर दृष्टि गयी तो संस्कारका वहाँ प्रयोजन नहीं रहा। अभ्यास करता रहे तो बीचमें संस्कार आते हैं। कितने ही जीव ऐसा अभ्यास करते-करते (आग जाते हैं)। एकदम अंतर्मुहूर्तमें हो जाय ऐसा कोई विरल होता है। बाकी अभ्यास करते-करते (आगे जाते हैं)। चतुर्थ कालमें जल्दी हो जाय ऐसे बहुत

होते हैं। तो भी अंतर्मुहूर्तमें हो जाय ऐसे तो कोई विरल होते हैं। अभ्यास करते-करते (बहुभाग होता है)।

नींव खोदते-खोदते निधान प्राप्त हो जाय, ऐसा तो किसीको ही होता है। बाकी तो महेनत करते-करते होता है। उसमें भी यह तो पंचमकाल है।

मुमुक्षु :- पूर्णता प्रगट कर। वास्तवमें तो तुझे यह सिखाते हैं। वह नहीं हो तो श्रद्धा प्रगट कर, और श्रद्धा भी न कर सके तो गहरे संस्कार तो डाल।

समाधान :- संस्कार तो डाल। उपदेशकी ऐसी शैली (है)। कोई सुनाये तो उसे मुनिपनाका उपदेश देते हैं। फिर मुनि न हो सके तो श्रावकका उपदेश देते हैं। पहले उतनी शक्ति न हो तो श्रावकका उपदेश (देते हैं)। सम्यग्दर्शनपूर्वक श्रावक।

यह पंचमकाल है। सम्यग्दर्शन पर्यंत परिणति प्रगट करनेका उतना पुरुषार्थ न हो तो रुचिके संस्कार डाल (ऐसा कहते हैं)। यथार्थ रुचि (कर कि), आत्मा ज्ञायक है, ये सब भिन्न है। उसमें तो शुभभावमें, क्रियामें, थोड़ा शुभभाव हुआ उसमें धर्म मान लिया, उसकी तो श्रद्धा भी जूठी, उसका सब जूठा है।

मुमुक्षु :- उसके संस्कार भी जूठे।

समाधान :- हाँ, सब जूठा है।

मुमुक्षु :- असत्के संस्कार।

समाधान :- धर्म दूसरे प्रकार-से माना। कोई कर देगा ऐसा माने। ऐसी कुछ-कुछ भ्रमणाएँ होती हैं। ये गुरुदेवके प्रताप-से वह सब भ्रमणा दूर हुयी है, गुरुदेवने सबको उपदेश दे-दे कर। भगवान कर देंगे, मन्दिरमें जायेंगे तो होगा, ऐसा करेंगे तो होगा, ऐसी सब भ्रमणा (चलती थी)। गुरुदेवने कहा, प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। तू कर तो होगा। शुभभाव आये देव-गुरु-शास्त्र तरफके, भक्ति आवे वह अलग बात है। परन्तु अंतरमें करना तो तुझे है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

धर्म ध्वजारोहण
ता. १९-१-२०२४

मंगलाचरण

चत्तारि मंगलं, अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलीपण्णत्तो धम्मो मंगलं

चत्तारि लोगुत्तमा, अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा,

केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

चत्तारि शरणं पव्वज्जामि, अरहंते शरणं पव्वज्जामि, सिद्धे शरणं पव्वज्जामि,

साहू शरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं शरणं पव्वज्जामि ।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी ते तरे,

सकल कर्मनो आणे अंत, मोक्ष तणा सुख लहे अनंत,

भाव धरीने जे गुण गाय, ते जीव तरीने मुक्ति जाय,

संसारमांहि शरण चार, अवर शरण न कोई, जे नर-नारी आदरे, तेने अक्षय अविचल पद होय ।

अंगूठे अमृत वसे, लब्धि तणा भंडार, ज्यां गुरु गौतमने समरिये तो सदाय मन वांछित फल दातार।

श्रोता : .....प्रतीति से कोई भी उपयोग को सम्हालता नहीं है .....

पूज्य बहिनश्री : ऐसा गुरुदेवश्री ने प्रथम क्या कहा....

श्रोता : गुरुदेवश्री ने निज घर जाने को बहुत बार कहा है। लेकिन..... कारण निमित्तपना उपयोगिता धरनेवाले अन्य बहुत से विकल्प भीतर में उपस्थित होते हैं.....

पूज्य बहिनश्री : वह सभी अनादि का अभ्यास है। भीतर में जो संस्कार और राग विद्यमान है, वह उपस्थित होता है उससे स्वयं के घर की ओर आने का प्रयत्न करना। यह सब जो संसार का भीतर में रागादि विद्यमान है वह उत्पन्न होता है और बारम्बार उस ओर ही उपयोग जाये बिना रहता नहीं है। मैं स्व घर ज्ञायक हूँ उस ओर उपयोग और प्रयत्न करने पर भी बार-बार छूट जाय तो भी बार-बार और प्रतिक्षण उसको उस ओर दृढ किये बिना और कोई रास्ता ही नहीं है। यह उपाय एक ही है बारम्बार चैतन्य को दृढ करके निश्चय करो कि मैं तो ज्ञायक ही हूँ, इस प्रकार दृढता, यथार्थ दृढता

करे उस ओर परिणति दृढ करके भी परिणति को दृढ करे तो रुचि दृढ करे तो उपयोग को झुकने में देर लगे तो बारम्बार उसे घुमाया करे तो वह अंतर में गया बिना रहेगा नहीं।

उसे बारम्बार मोडना (अंतर में घुमाना) पड़ता है। क्योंकि संस्कार अनादि के है और अनेक प्रकार के विकल्प है वे सभी उपस्थित हुए है। रुचि स्व की ओर झुके तो उपयोग भी उस ओर आये बिना रहेगा नहीं। वह तो अपनी रुचि और निर्णय दृढ हो कि करने जैसा हो तो यह ही है, अन्य कुछ भी करने जैसा नहीं है। ज्ञायक को पहिचानते, ज्ञायक का स्वभाव पहिचानकर और उसमें परिणति को दृढ करना यह ही करने जैसा है। भेदज्ञान की धारा प्रकट करना, उपयोग तो अंतर्मुहूर्त का है, पलटता रहता है किन्तु रुचि और परिणति दृढ करे तो उपयोग भी उस ओर आये बिना रहता नहीं है।

बारम्बार समय-समय पर उपयोग उस ओर गये बिना रहता नहीं है। यहाँ अशुभ में से शुभ में आये, द्रव्य-गुण-पर्याय के विचारों में आये उसके बाद मैं ज्ञायक हूँ वह ज्ञायक की ओर रहे, मैं सभी विकल्पों से पृथक् तत्त्व हूँ ऐसा निर्णय करे और विकल्प से छूटने का प्रयत्न करे तो होगा। छूट सकता है और कितने छूट चूके है और अनंत मोक्ष में गये हैं वे सभी भेदज्ञान से ही गये है। सभी गये है वे ज्ञायक की परिणति दृढ़ करके गये हैं।

श्रोता : सनातन धर्म क्या है उसे समझाने की कृपा किजीये।

पूज्य बहिनश्री : सनातन धर्म। सनातन धर्म अर्थात् जो अनादि का धर्म है, जो आत्माने धारण किया है वह सनातन धर्म है। जो आत्मा का धर्म वह सनातन है, सनातन अर्थात् पूर्व का, पूर्व का अर्थात् जो अनादि से चाला आ रहा है वह। आत्मा का स्वभाव वह ही धर्म है। आत्मा जो ज्ञान स्वभाव है उस रूप ज्ञानस्वभाव को प्रकट करना उस ज्ञायक को ज्ञायकरूप प्रकट करना, वीतराग स्वरूप है उसको वीतरागरूप प्रकट करना वह ही सनातन धर्म है।

श्रोता : पुराना और....

पूज्य बहिनश्री : यह पूर्व का जो आत्मा का स्वभाव अनादि से शाश्वत है उसे प्रकट करना वह सनातन है।

श्रोता : धर्म का स्वरूप तो इतना ही न !

पूज्य बहिनश्री : धर्म का स्वरूप धर्म अर्थात् वह धर्म आत्मा में है। जो जिसका स्वभाव वह उसका धर्म, बाह्य से जो धर्म कहने में आता है वह शुभभाव वह पुण्य बंध का कारण है।

भगवान की भक्ति करना, भगवान का इस प्रकार पूजा करे, शास्त्र स्वाध्याय करे, शास्त्र वांचन, तत्त्व के विचारों करे, यह सभी धर्म कहा जाता है। वह धर्म पुण्यधर्म कहा जाता है। उससे पुण्य होता है, शुभभाव हो उससे देवलोक की प्राप्ति होगी, भव का अभाव नहीं होगा, भव का अभाव अंदर आत्मा का जो स्वभाव है जो जाननहार अनादि का जो आत्मा का स्वभाव है उसे प्रकट करे तभी धर्म होगा। आत्मा में धर्म है किन्तु न हो तब तक विचार करे, वांचन करे ऐसे सभी शुभभाव होते है। वह शुभभाव को व्यवहार से धर्म कहा जाता है।

श्रोता : यथार्थ सुख....यथार्थ सुख किसमें है ?

पूज्य बहिनश्री : यथार्थ सुख भी आत्मा में हैं, आत्मा में ही है, बाह्य में सुख नहीं है। बाह्य में जो सुख माना है वह बाह्य में सुख नहीं है। बाह्य में माने, संसार, धन ..... मिले और शरीर अच्छा हो और सभी अनुकूलता मिले, सभी जगह मान, कीर्ति मिले यह कोई वास्तविक सुख नहीं है, यह तो कल्पित सुख है। मकान मिले और उसमें सुख माने तो वह सुख नहीं है, वह तो मात्र कल्पना है। बाह्य में सुख नहीं है। सुख अंदर आत्मा में है। बाह्य में कहीं विकल्पों में, राग में कहीं सुख नहीं है। जो वीतरागी भाव अंदर है आत्मा में उसमें सुख है उसमें आनंद है, सब कुछ आत्मा में ही है। बाहर में कहीं सुख नहीं है। मात्र भ्रांति से माना है कि मुझे बाहर से सुख मिलता है। सुख कहीं बाह्य में नहीं है, कल्पना से सब कुछ है। वह सुख शाश्वत रहता नहीं है। मात्र कल्पित सुख है वह आत्मा का सुख नहीं है, मात्र वे सभी बाह्य संयोग में सुख वह सुख नहीं है। सुख आत्मा में ही है, वह ही उसका स्वभाव है। आत्मा का सहज स्वभाव है, जानने का, देखने का, लीनता का। चारित्र अंदर सुख है आत्मा में, आनंद है आत्मा में। यह आनंद आत्मा का कोई अपूर्व है जिसकी कोई उपमा नहीं ऐसा आनंद और सुख आत्मा में विद्यमान है। उस सुख को किसी प्रकार की उपमा जैसे किसीको देवलोक की, किसीको चक्रवर्ती के राज की भी नहीं दे सकते है। ऐसा सुख आत्मा में विद्यमान है और वह अनुपम है। वह सुख कैसे प्रकट हो कि आत्मा को पहिचाने तब, यह शरीर मैं नहीं हूँ, यह राग वह मैं नहीं हूँ। मैं तो उससे पृथक् हूँ। ऐसे आत्मा को पहिचाने उसका भेदज्ञान हो, उसमें लीनता करे तो वह सुख प्रकट होता है। विकल्प से छूटकर आत्मा में लीन हो तो वह सुख आत्मा के लिये कोई अपूर्व आनंद प्रकट हो कि जो आनंद चक्रवर्ती के राज में कहीं पर भी नहीं है। ऐसा सुख आत्मा में है।

श्रोता : वह उसके समान है जैसे जेवर बिना, जिस प्रकार वस्त्र बिना जेवर शोभा नहीं देते वैसे नीति बिना धर्म शोभता नहीं है, तो हे माताजी ! इस बोल में कृपालु गुरुदेव लौकिक नीति और लोकोत्तर नीति में व्यवहारधर्म निषेध की वात करते है, तो उसे समझाने की कृपा किजीये।

पूज्य बहिनश्री : गुरुदेवश्री सभी नीति की वात करते है। लौकिक और लोकोत्तर सभी नीति (की बात करते है), व्यवहार से नीति होनी चाहिये और पात्रता ऐसी होनी चाहिए और उसे धर्म की रुचि लगे, जिससे धर्म प्रकट होता है, तो धर्म की रुचि हो उसे लौकिक नीति भी होनी चाहिये।

श्रोता : माताजी ! .....

पूज्य बहिनश्री : उसका व्यवहार, उसका नैतिक, उसके बाह्य आचरण ऐसे नहीं होने चाहिये कि उसे अनीति नहीं होनी चाहिये। जैसे जूठ बोलना, जूठा व्यापार, जूठ वह अनेक प्रकार का होता है, घोखाघडी, गृद्धि वह अनेक प्रकार की वृत्ति बाह्य की उन सभी का रस निर्झरीत हो जाता है, बाह्य में नीति सभी बराबर होनी चाहिये। जिनको आत्मा की रुचि लगे उसका सभी प्रकार का बाह्य रस निर्झरीत हो जाता है और नीतिमय जीवन हो जाता है। उसमें आता है न सात व्यवसन नहीं होने चाहिये।यह सभी आता है।

इस प्रकार का भोजन नहीं लेना चाहिये वह सभी शास्त्र में आता है, गुरुदेवश्री भी कई बार कहते थे। वह तो उसके व्यवहार में आ जाय और आत्मा की रुचि लगे उसे रस की रुचि कम हो उस प्रकार का भोजन लेते है। त्रस जीवों

को ऐसा न होता है, लौकिक नीति होती है, जूठ नहीं बोलते है, गृद्धि नहीं होती है यह सब कुछ होता है, अंतर आत्मा की रुचि लगे ऐसा होता है। (**श्रोता** : व्यापार-धंधा .....) व्यापार-धंधा आदि सब कुछ उस में आ जाता है।

श्रोता : वह भाव से भी कुछ भी धर्म हुआ नहीं है।

पूज्य बहिनश्री : वह हो तभी धर्म शोभता है। तब ही उसको धर्मी रुचि लगे और धर्म शोभता है, धर्म की रुचि हो उसे ऐसा होना ही न चाहिये ।

श्रोता : माताजी ! खाने की बात अलग है, खाने की बात पृथक् है किन्तु (स्वाद के लिए) व्यापार हेतु ऐसी कोई वस्तु हमें बाजार में से लाना हो तो उसमें तो कई आपत्ति को नहीं न ?

पूज्य बहिनश्री : क्या व्यापार में... ?

श्रोता : व्यापार हेतु बाजार में से ऐसी कोई वस्तु लाकर बेचने में तो कोई आपत्ति तो नहीं है न ?

पूज्य बहिनश्री : जो वस्तु खाने की नहीं हो उसकी बिक्री भी नहीं करना चाहिये। जिन्हें आत्मा की रुचि जागृत हुई हो उसे ऐसा नहीं होता है, कुछ भी नहीं होता है, ऐसा होता है कभी ? ऐसा हो जो हम नहीं खा रहे वह वस्तु अन्य को बेचना नहीं चाहिये।

श्रोता : उससे भावभासन में क्या अंतर पड़ता है ?

पूज्य बहिनश्री : भावभासन अर्थात् यह ज्ञायक है वह ज्ञायक का भाव उसको भासन में होना चाहिये कि यह ही ज्ञायक है अन्य नहीं है। यह जो विकल्प सभी आते है वे भी पण यह ज्ञायक ही है यह ज्ञायक वह ही मैं हूँ इस प्रकार का भाव अंदर से चैतन्य का भाव, उसे चैतन्य का स्वभाव उसके भासन में आना चाहिये। मात्र इतना ही जाने कि बाहर का जाने वह मैं ऐसा नहीं। जो स्वयं ज्ञायक है उसका स्वयं भास उसे आना चाहिये कि यह स्वयं ज्ञायक स्वयं स्वयं से ही स्वयं वस्तु स्वतःसिद्ध है वह स्वयं ज्ञायक है। ऐसा ज्ञायक का भाव उसे भासन में आना चाहिये।

श्रोता : भावभासन हो तो पुरुषार्थ अधिक सरल बन सकता है।

पूज्य बहिनश्री : भावभासन स्वयं को पहिचाने अर्थात् पुरुषार्थ उसे सरल हो जाता है। पहिचाने तो आगे वृद्धि हो न ! पहिचान बिना आगे कहाँ से जायेगा ? मार्ग को जाने, स्वभाव को पहिचाने तो उसका पुरुषार्थ उस ओर जाता है कि इस ओर जाना है तो उस ओर पथ पर चलने का प्रयत्न करे। स्वयं रुचि करके उसमें स्थित है वह ठीक है लेकिन यह अभ्यास करे तो उसे ज्ञायक है, ज्ञायक ज्ञायकरूप किस प्रकार हो उस जाति का अंतरमें से उसे वेदन और लगनी आनी चाहिये, तो उस प्रकार का प्रयत्न हुए बिना रहता नहीं है। पश्चात् कोई ..... (गोखवारूपे) कर डालते है, कोई रुखापने कर लेते है कि मैं तो जाननहार हूँ, वह कार्य करता नहीं है उसकी वात नहीं है। लेकिन अंतर में से जिन्हें ऐसी लगनी लगी है, और ज्ञायक का भाव ग्रहण करके जो स्थित है और पुरुषार्थ करता है तो उसको कोईबार उसे विकल्परूप कोईबार भाव भावभासन ऐसा पुरुषार्थ उसको चलता ही रहता है। कोई ऐसा कहे कि मैं तो जाननहार कुछ भी करता नहीं हूं ऐसी रूखी बात करे उसकी यहाँ बात नहीं है। (श्रोता : बराबर है) (.....)

श्रोता : माताजी ! पूज्य गुरुदेवश्री के वचनामृत के चौथे बोल में आता है कि 'पूर्णता के लक्ष से प्रारम्भ वह ही वास्तविक प्रारम्भ है'। तो पूर्णता अर्थात् क्या लेना ? पूर्णता अर्थात् सिद्धदशा के लक्ष्य से या पूर्ण त्रिकाली स्वरूप के लक्ष्य से। कृपा करके समझाए। (**पूज्य बहिनश्री** : ...?) पूर्णता अर्थात् सिद्धदशा के लक्ष्य से या यह पूर्ण त्रिकाली स्वरूप के लक्ष्य से। 'पूर्णता के लक्ष से प्रारम्भ ही वास्तविक प्रारम्भ है'।

पूज्य बहिनश्री : उसमें से दोनों अर्थ नीकलते हैं। पूर्णता के लक्ष से जो आत्मा परिपूर्ण स्वभाव परिपूर्ण है उसे लक्ष में लेने से शुरूआत यथार्थ होती है। लेकिन शरूआत करके कहाँ पहुँचना है, अंत पूर्णता तक ऐसा भी अर्थ उसमें से–दोनों अर्थ नीकलता हैं। द्रव्य स्वयं स्वभाव से शुद्ध परिपूर्ण है वह जो उसके लक्ष में आये और उसकी पहिचान, उसका आश्रय ले तभी शुरूआत सच्ची होती है। लेकिन शुरुआत पश्चात् दूसरा अर्थ यह है कि शुरुआत करके उसने कहाँ ध्येय को बांधा, कहाँ जाने का है, अंत तक आत्मा की परिपूर्ण निर्मलता हो वहाँ तक पहुँचना है, इस प्रकार लक्ष में ले तो ही यथार्थ शरुआत होती है। जिस गाँव जाना है उसे समझकर जो चलने लगे तो वह बराबर है लेकिन बिना ध्येय के यथार्थ शुरुआत हो ही सकती नहीं है। दो अर्थ उसमें से नीकलते हैं। पर्याय पूर्ण प्रकट करके केवलज्ञान प्रकट करने का है; उसके लक्ष से साधकदशा की शुरुआत होती है। सम्यग्दर्शन प्रकट, सम्यग्दर्शन एक अंश है, उसने द्रव्य को तो लक्ष में लिया नहीं कि द्रव्यस्वभाव परिपूर्ण लक्ष में लिया एक अंश में साधकदशा हुई लेकिन अभी साधना शेष है। अभी साधना बाकी है आखिर तक केवलज्ञान की प्राप्ति वीतरागदशा करने की है ऐसा उसको लक्ष में हो तभी ही यथार्थ शुरूआत होती है।

सम्यग्दर्शन प्राप्त हो तो भी अभी पूर्णता हुई नहीं है। अभी तो अंश है, परिपूर्ण वीतरागदशा बाकी है। पूर्णता के लक्ष से शुरुआत होती है। यथार्थ शरूआत वहाँ से होती हैं।

श्रोता : माताजी कोई जीव सम्यग्दर्शन का ध्येय रखकर प्रारम्भ करे तो वह बराबर नहीं है ?

पूज्य बहिनश्री : सम्यग्दर्शन का ध्येय रखकर शुरुआत करे वह शुरुआत नहीं है। सम्यग्दर्शन प्रकट करना लेकिन सम्यग्दर्शन किसके आश्रय से होता है? सम्यग्दर्शन, वैसे तो द्रव्य के आश्रय बिना सम्यग्दर्शन प्राप्त होता नहीं है। यथार्थ शुरुआत सम्यग्दर्शन के लक्ष से होती नहीं है। द्रव्य के लक्ष से शुरुआत होती है अथवा तो मुझे द्रव्य की परिपूर्ण निर्मलता प्रकट करनी है, इस प्रकार शुरुआत होती है। मात्र सम्यग्दर्शन की भावना आती है। सम्यग्दर्शन कि अनादिकाल से यह सम्यग्दर्शन जिससे भव का अभाव होता है ऐसा सम्यग्दर्शन जीव ने प्राप्त किया नहीं है कि सब कुछ प्राप्त कर लिया लेकिन एक सम्यग्दर्शन कि जिससे भव का अभाव हो, आत्मा की स्वानुभूति की दशा प्राप्त हो, आत्मा प्राप्त हो, जिससे भव का अभाव होकर ऐसा सम्यग्दर्शन प्राप्त किया नहीं है इसलिये सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करना ऐसी भावना आये लेकिन सम्यग्दर्शन किसके आश्रय से होता है और सम्यग्दर्शन की शुरुआत किस प्रकार होती है यह सब कुछ जाने बिना सम्यग्दर्शन के लक्ष से सम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन के आश्रय से सम्यग्दर्शन अथवा सम्यग्दर्शन को लक्ष में रखकर सम्यग्दर्शन ऐसे होता नहीं है। उसकी भावना आती है लेकिन उसे तो द्रव्य का आश्रय होता है और पूर्णता लक्ष में होती है। सम्यग्दर्शन से अंतरंग वीतरागता प्रकट करने की होती है।

श्रोता : पूर्णता के दो अर्थ आपने कहे उसे तो हम मानते है, यह स्वभाव के आश्रय से ज्ञायक के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन प्रकट हो लेकिन सम्यग्दर्शन का ध्येय रखकर, मोक्ष का ध्येय नहीं लेकिन सम्यग्दर्श का ध्येय रखकर वह प्रयत्न कर सकता है अथवा नहीं कर सकता है ?

पूज्य बहिनश्री : सम्यग्दर्शन का ध्येय नहीं, आत्मा का ध्येय होना चाहिए। सम्यग्दर्शन की भावना होनी चाहिए।

श्रोता : पूर्णता का ध्येय होना चाहिए।

पूज्य बहिनश्री : पूर्णता का जोर होना चाहिए, (**श्रोता** : मोक्ष का ध्येय होना चाहिए) मोक्ष का ध्येय होना चाहिये। द्रव्य का ध्येय और पूर्णता का ध्येय होना चाहिए।

श्रोता : किसी को ऐसा लगे कि अभी इतनी बड़ी बात करना उससे बदले अभी हम सम्यग्दर्शन का ध्येय रखकर हम स्वभाव का आश्रय तो क्या वास्तव में वह रुक जायेगा या उसे सम्यग्दर्शन होगा ?

पूज्य बहिनश्री : वह भी उसे स्वभाव का आश्रय आता ही नहीं। मात्र अपूर्ण ध्येय होय तो। उसको द्रव्य का आश्रय कब आयेगा कि उसके ध्येय में सभी परिपूर्णता हो तभी उसको द्रव्य का आश्रय आता है। (**श्रोता** : बराबर)

श्रोता : वह ही आपके पास से जानना था। उसमें सम्यग्दर्शन के ध्येय से सम्यग्दर्शन प्राप्त हो और यह लक्ष भी पूर्णता को हो और ध्येय भी पूर्ण प्राप्ति करने का हो तभी सम्यग्दर्शन से लेकर सभी पर्यायें निर्मल होती है ?

पूज्य बहिनश्री : सभी पर्यायें निर्मल होती है। सम्यग्दर्शन प्राप्त किया अर्थात् मैंने सब कुछ कर लिया, ऐसा सम्यग्दृष्टि को होता नहीं है। वह तो अंश है ऐसा उसे ख्याल में यथार्थ साधना उसकी साधना से शुरुआत होती है, अभी तो उसे साधना की ओर मात्र कदम बढायें है; अभी तो उसे आगे जान है। प्राप्त करनेवाले को ऐसा बस हो गया ऐसा नहीं होता है। उसको तो भावना ऐसी आती है कि सम्यग्दर्शन अनादिकाल का प्राप्त किया नहीं है उसे प्राप्त करे तो भव का अभाव हो वहीं से ही मोक्ष की शुरुआत होती है।

इतनी उसकी भावना लेकिन उसका उपाय क्या ? उसके ध्येय में क्या होता है यह तो बराबर उसे जानने का होता है। तो इतने में संतोष हो जाय तो उसे सम्यग्दर्शन इस प्रकार हो सकता नहीं है।

श्रोता : समयसार की प्रथम गाथा में श्री गुरु स्वयं के आत्मा में और श्रोताओं के आत्मा में अनंत सिद्धों की स्थापना करते है तो श्रोता में अनंत सिद्धों की स्थापना करना अर्थात् उसमें क्या करना ? क्या करने को कहना चाहते है?

पूज्य बहिनश्री : श्रोता को। श्रोता को जो कोई समझाये गुरुदेव और आचार्यों, ऐसा कहते है कि मैं तेरे आत्मा में अनंत सिद्धों की स्थापना करुं अर्थात् तू सिद्ध भगवान जैसा है। जैसे अनंता सिद्धों हैं वैसा ही तुम हो। इस प्रकार हम तुझे स्थापना करके कहते है इसलिये तू स्वीकार कर कि तू सिद्ध भगवान समान ही है और तू जैसे सिद्ध भगवान वैसा तेरा स्वभाव उस रूप परिणमित होकर और पुरुषार्थ कर सके ऐसा हूँ, इस प्रकार तू स्वीकार कर। ऐसा आचार्यदेव और गुरुदेव ऐसा कहते है कि हम तेरे आत्मा में सिद्ध भगवान की स्थापना करते है, कि तू सिद्ध भगवान समान है ऐसा तू स्वीकार

कर। इस प्रकार श्रोता को स्वयं स्वीकार करने का है। जो गुरु कहते है उसके सामने श्रोता भी ऐसे है कि स्वीकार करते है कि मैं सिद्ध भगवान समान हूँ।

इसलिये जो गुरु कहते है कि मैं स्वीकार करके उसरूप परिणमित हो जाउँ, इस प्रकार स्थापना करने की है कि जैसे अनंता सिद्धों है ऐसी ही मैं सिद्ध भगवान समान ही हूँ। मेरा स्वभाव ऐसा है इसलिये में उस रूप हो सकता हूँ ऐसा हूँ। मुझ में कुछ नहीं है और मैं किस प्रकार करुं, ऐसा नहीं है, अर्थात् गुरुदेव और आचार्यों सिद्ध भगवान की स्थापना करते है कि अन्य के श्रोताओं का आत्मा कि तू सिद्ध भगवान जैसा है तू स्वीकार कर। जैसे सिद्ध भगवान वैसा ही तू है इस प्रकार स्थापना आचार्यदेव ने गुरुदेव ने कृपा करके शिष्य को सिद्ध भगवान जैसा कहा है कि तू सिद्ध है, तू भगवान है ऐसा स्वीकार कर।

अर्थात् श्रोता यदि पात्र (श्रोता) हो तो वह स्वीकार कर लेता है कि हाँ मैं सिद्ध भगवान जैसा हूँ। चाहे उसे ऐसा यथार्थ परिणमन बाद में हो। लेकिन प्रथम ऐसा निश्चित करता है कि यह मुझे गुरुदेवश्री ने कहा था। सिद्ध भगवान तो हूँ सिद्ध भगवान जैसा हूँ ऐसा तू स्वीकार कर, इस प्रकार कहते है। स्थापना करके ऐसा कहते है। प्रथम तो हम तुझे सिद्ध भगवान समान मानकर तुझे उपदेश देते है। तू नहीं समझ रहा ऐसा मानकर नहीं कहते है। तू सिद्ध भगवान समान ही है ऐसा तू दृढ़ निश्चय करेगा तो तेरा पुरुषार्थ प्रकट होगा, ऐसा इस प्रकार कहने का है।

प्रशममूर्ति भगवती मात की जय हो।

करूणामूर्ति पूज्य भगवती मात की जय हो.....

ट्रेक-१९२

मुमुक्षु :- अनुभूतिके पहले कैसे...?

समाधान :- अनुभूतिके पहले तो उसकी उस जातकी लगन, उस प्रकारकी चटपटी हो, लगन हो, ज्ञायकको ग्रहण करने ओरकी उसकी परिणति हो। यह ज्ञायक ही है, अन्य कुछ मैं नहीं हूँ। ऐसा ज्ञायक ओरका निश्चय दृढ़ करना चाहिये। भेदज्ञानकी परिणति दृढ़ करनी चाहिये। ये सब मैं नहीं हूँ, मैं तो चैतन्य हूँ। अपना स्वभाव अंतरमेंसे ग्रहण होना चाहिये। स्वभावको ग्रहण करे, बारंबार-बारंबार चैतन्यकी धून लगे, चैतन्यके अलावा कहीं रुचे नहीं। एक चैतन्यमय जीवन कैसे हो जाय, ऐसी अपनी दृढ़ परिणति उस ओरकी होनी चाहिये। चैतन्यकी ही धून लगनी चाहिये। जागते-सोते चैतन्य-चैतन्य ओरकी परिणति ही जागृत रहनी चाहिये।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- विभावकी ओर दुःख और स्वभावका ग्रहण, दोनों साथमें (होते हैं)। स्वभावको ग्रहण करनेका प्रयत्न (होना चाहिये)। स्वभावमें ही सर्वस्व है, ऐसा निश्चय। स्वभाव ग्रहण करनेकी उसकी प्रतीति जोरदार होनी चाहिये और विभावकी ओर दुःख लगे, दोनों साथमें होते हैं।

मुमुक्षु :- सभी आत्माओंको इसी प्रकारकी विधि, विभाव परिणतमें दुःख लगे और स्वभाव ओर मुडे?

समाधान :- स्वभाव ग्रहण करनेकी परिणति। निज स्वभाव ओरका निश्चय और विभावमें दुःख लगे। विभाव तो आकुलतारूप ही है, स्वयंको आकुलता लगती नहीं है। उसका स्वरूप पहचाने कि ये तो आकुलता ही है। स्वभाव है वही शान्तिरूप है। ऐसा निश्चय स्वयंको होना चाहिये। विभाव ओर उसकी परिणति टिक न सके, अंतरकी ओर अंतरमें ही सुख है। विभाव होता है, परन्तु उसकी एकत्वबुद्धिको तोड़ता जाता है, स्वभावकी ओर मुडता जाता है।

मुमुक्षु :- अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आने पूर्व उसे शुभभावरूप परिणतिमें उसे आकुलताका वेदन होता है?

समाधान :- शुभभावकी परिणति होती तो है, परन्तु यह मेरा स्वभाव नहीं है,

ऐसा उसे निश्चय होता है। उसे आकुलता तो लगती है। ये सब मेरा स्वभाव नहीं है। सबमें आकुलता है तो आकुलता ही लगती है।

मुमुक्षु :- युक्तिसे आकुलताका वेदन लगे या वास्तवमें मन्द कषायमें भी आकुलताका (वेदन होता है)?

समाधान :- नहीं, युक्तिसे ग्रहण करे लेकिन उसे वेदनमें भी ऐसा लगे कि यह आकुलता है। उसमेंसे छूट नहीं सकता है, परन्तु उसे वेदनमें लगे कि ये आकुलता है।

मुमुक्षु :- मन्दमें मन्द कषाय हो तो भी उसे उस प्रकारका वेदन होता है?

समाधान :- हाँ, वह आकुलता है। .. किया कि यह आकुलता है और यह स्वभाव है। ऐसा निश्चय किया उतना ही नहीं, अपितु उसे अन्दर वेदनमें भी लगता है कि यह आकुलता है।

मुमुक्षु :- खटकका भी वही प्रकार, आकुलताका वेदन होता है इसलिये खटक रहा करे।

समाधान :- खटक रहा करे कि यह आकुलता है। लेकिन वह बीचमें आये बिना नहीं रहता। अभी शुद्धात्माका स्वरूप प्रगट नहीं हुआ है, वहाँ बीचमें आता है। अभी पूर्णता नहीं है, भले भेदज्ञानकी परिणति चालू हो तो भी बीचमें शुभभाव आते हैं। परन्तु वह समझता है कि आकुलता है। आकुलता आकुलतारूप वेदनमें आती है, स्वभाव स्वभावरूप वेदनमें आता है।

मुमुक्षु :- प्रश्न तो इतना होता है कि साधकको तो वैसा होना बराबर है, क्योंकि उन्होंने तो अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद चखा है, इसलिये आकुलता प्रत्यक्ष लगे। परन्तु उसके पहले भी मिथ्यादृष्टिकी भूमिकामें भी मन्द कषायमें भी वेदनमें आकुलता लगती है।

समाधान :- उसे लगे। खटककी तीव्रता हो जाय तो उसे लगे कि यह आकुलता है। नक्की करता है। वह प्रगट नहीं हुआ है तो वह अंतरमें अमुक प्रकारका वेदन पहचानकर नक्की करे तो अपनेसे नक्की किया ऐसा कह सकते हैं। ये अभी वेदनमें आता है, ये सब प्रवृत्तिरूप भाव आकुलतारूप है। ये ज्ञान है वह शान्तिरूप है। अमुक प्रकारसे वह युक्तिमें लेता है, अपने वेदन परसे नक्की करे तो उसने कुछ यथार्थ नक्की किया कहनेमें आये। ऊपर-ऊपरसे नक्की करे वह यथार्थरूपसे नक्की नहीं हुआ है।

स्वयं अपना स्वभावको पहचानकर, अपना वेदन अंतरसे पहचानकर नक्की करे तो उसने कुछ यथार्थ नक्की किया है। इसलिये उसे वेदनमें आता है कि यह आकुलता है, यह स्वभाव ज्ञान है वह शान्तिरूप है। लेकिन वह उससे छूट नहीं सकता है, भेदज्ञान नहीं होता है, परन्तु वह अमुक प्रकारसे निश्चय तो कर सकता है। उसके

स्वयंके वेदनमें भी ज्ञात हो सके ऐसा है कि ये आकुलता है, ये शान्ति है, ज्ञान है। ज्ञायकता है वह शान्ति है। ऐसे।

मुमुक्षु :- ज्ञानी धर्मात्माको-भगवानको कैसा सुख होगा, वह भी नक्की हो सकता है? वेदनसे, अनुमानसे।

समाधान :- वेदनसे नक्की नहीं (कर सकता), परन्तु वह अनुमानसे नक्की कर सकता है। सुख कैसा हो? उस सुखका वेदन स्वयंको नहीं है।

मुमुक्षु :- स्वयंको दुःखका वेदन है, इससे विरूद्ध..

समाधान :- इससे विरूद्ध सुख (है), वह अनुमानसे नक्की कर सके। आकुलतासे विरूद्ध निराकुलता, उतना वह नक्की करे। परन्तु वह आनन्द गुणको नक्की करना वह अनुमानसे नक्की कर सके। आनन्दगुण उसे कहीं वेदनमें नहीं आता है। अनुमानसे अमुक प्रमाण परसे वह नक्की कर सकता है। युक्तिसे, स्वभावसे अमुक नक्की कर सकता है। उसके वेदनमें नहीं आता है।

मुमुक्षु :- आकुलताका तो वेदन होता है, इसलिये ज्ञानकी सूक्ष्मता होने पर उसे पकड़में आता है।

समाधान :- उसे पकड़में आता है। सुख पकड़में आये कि निराकुलता वह सुख, आकुलता वह दुःख। परन्तु आनन्दगुण है वह उसे अनुमानसे, अमुक प्रमाण परसे नक्की करे। जीव आनन्दको इच्छता है, इसलिये आत्मामें ऐसा कोई आनन्दगुण है कि जिसकी वह इच्छा करता है वह मिलता नहीं है। आत्मामें ऐसा आनन्दगुणका स्वभाव है।

मुमुक्षु :- माताजी! अन्दर जो शुभाशुभ भाव होते हैं, वह तो ..

समाधान :- भाव जो होते हैं उसे समझकर, वह भाव है वह आकुलताका वेदन है। अन्दर जाननेवाला है वह भिन्न है। शुभाशुभ भावोंको जाननेवाला भिन्न है और शुभाशुभ भाव भिन्न है। वेदन होता है वह तो आकुलतारूप है। उससे भिन्न मैं चैतन्य हूँ, उसे जाननेवाला भिन्न है।

मुमुक्षु :- ख्यालमें आता है न कि ये भाव हुआ, यह भाव हुआ। जो भाव होते हैं वह पकड़में आते हैं कि ऐसे भाव हुए। जिसे मालूम पड़ता है वह मैं हूँ, ऐसे?

समाधान :- हाँ, वह जो मालूम पड़ता है वह मैं हूँ। परन्तु वह मालूम पड़ता है वह उसकी पर्याय है, मूल तत्त्वको ग्रहण करनेका है। जो मालूम पड़ता है वह बराबर, मालूम पड़ता है वह ज्ञानकी पर्याय है। जो ये शुभाशुभ भाव होते हैं कि यह भाव आया, यह भाव आया, यह भाव आया। वह सब ज्ञानकी पर्याय है। परन्तु उसमें मूल वस्तु जो अनादिअनन्त है वह ज्ञायक परिपूर्ण है। एक-एक वस्तुको जाने,

एक-एक विकल्पको जाननेवाला पर्यायें हुयी, परन्तु मैं एक अखण्ड ज्ञायक शाश्वत हूँ। ऐसे अखण्ड द्रव्यको ग्रहण करना। जो मालूम पड़ता है, उस परसे उसका पूर्ण अस्तित्व ग्रहण करना।

मुमुक्षु :- जो मालूम पड़ता है वह पदार्थ मैं हूँ।

समाधान :- हाँ, जो मालूम पड़ रहा है, वह पदार्थ मैं हूँ। जो खबर करनेवाला है वह मूल वस्तु अनादिअनन्त स्वतःसिद्ध मैं हूँ। जो शुभाशुभ भावोंको जाननेवाला है, वह खबर करनेवाला है, उसका जो मूल शाश्वत अस्तित्व है वह मैं हूँ। वह अस्तित्व पूर्ण ज्ञायक है। उस ज्ञायकमें अनन्त शक्तियाँ भरी हैं।

मुमुक्षु :- मालूम पड़नेमें अस्तित्व मालूम पड़ता है, बाकी दूसरे गुण इतने मालूम नहीं पड़ते हैं कि दूसरे-दूसरे गुण है, उसका उतना ख्याल नहीं आता है। मालूम पड़ता है इसलिये .. ज्ञात होता है। परन्तु दूसरे भी अनन्त गुण हैं, वह मालूम नहीं पड़ते।

समाधान :- वह दिखाई नहीं देते हैं। परन्तु जो शक्तिवान पदार्थ है, जो ज्ञायक है वह अनन्त शक्तिसे भरपूर हो। जो द्रव्य हो वह खाली नहीं होता, उसमें अनन्त गुण ही होते हैं। द्रव्य उसका नाम कहें कि जिसमें अनन्त शक्तियाँ हो। जिसमें अमर्यादित वस्तु है, चाहे जितना परिणमे तो भी खत्म न हो, ऐसी अनन्ततासे भरा द्रव्य है। फिर उसके युक्ति, प्रमाणसे नक्की होता है।

मुमुक्षु :- शान्तिका तो ख्याल आता है कि जब अन्दर जाते हैं तब सुख लगता है, बाहरमें .. उतना मालूम पड़ता है। शान्ति मालूम पड़ती है कि अन्दर जाते हैं तो थोडी..

समाधान :- शान्ति लगती है। अनन्त गुण तो दिखाई नहीं देते, परन्तु वह अनन्त शक्तिवान पदार्थ है। जिसमेंसे जो अनन्त पर्याय (होती है)। ज्ञान है वह अधूरा नहीं होता। जो स्वतः ज्ञान, स्वयं स्वतःसिद्ध वस्तु है, वह वस्तु अनादिअनन्त है। उस ज्ञानकी कोई मर्यादा नहीं होती। ऐसा ज्ञान अमर्यादित है। इसलिये अमर्यादित ज्ञान हो वह अनन्त शक्तिसे भरा हुआ ज्ञान है। ऐसे उसमें अस्तित्व, वस्तुत्व आदि अनन्त गुण हैं। वैसे उसमें आनन्दगुण है। वह भी अनन्तासे भरा है। इस तरह द्रव्य अनन्त-अनन्त शक्तिओंसे भरा है। वह दिखता नहीं है, वेदनमें नहीं आता है, परन्तु उसका अनुमान हो सकता है। और वह युक्ति ऐसी होती है कि यथार्थ होती है। वह स्वयं नक्की कर सकता है।

मुमुक्षु :- अस्तित्वका भी ख्याल आता है कि मेरी मौजूदगी है। ... उसका ख्याल आये, अस्तित्वका ख्याल आये।

समाधान :- अस्तित्व, परन्तु वह अस्तित्व अनन्ततासे भरा है। ऐसा स्वयं नक्की

करे तो हो सकता है। आचार्योंने युक्तिसे, दलीलसे (सिद्ध किया है)। जो अस्तित्व हो वह अधूरा नहीं होता। पूर्ण अनन्त स्वभावसे भरा है।

समाधान :- ... अनादिअनन्त जैसा है वैसा ज्ञायक है। दृष्टि तो ऐसी कर। उसकी कृतकृत्य दशा पूर्ण पर्याय प्रगट हो तब हो। नहीं तो अनादिअनन्त.. दृष्टि तो चैतन्य पर स्वयं जैसा है वैसा ही है। उसमें कोई फेरफार नहीं हुआ है। ऐसे द्रव्य पर दृष्टि कर। स्वयं जाननेवाला है। साधकभाव भी व्यवहार है। इसलिये उस प्रकारसे स्वयं विभाव कर्ता नहीं है। अधूरी पर्याय जितना भी स्वयं नहीं है। अधूरी पर्यायें हों, वह भी अपना मूल स्वरूप नहीं है। इसलिये तू द्रव्य पर दृष्टि कर। क्षयोपशमभाव और उपशमभाव भी अधूरी पर्यायें हैं। इसलिये तू पूर्ण पर दृष्टि कर। तू जाननेवाला ज्ञायक है। आगे-पीछे मैंने कुछ सुना नहीं है, परन्तु उसका आशय यह है।

साधकभाव भी व्यवहार है। दृष्टि तो अखण्ड होती है। साधकभाव बीचमें आये बिना रहता नहीं। साधकभाव व्यवहार है। इसलिये तू अखण्ड द्रव्य पर दृष्टि कर। वह अखण्ड है उसमें साथमें पुरुषार्थ आ जाता है। पुरुषार्थ उसमें (है)। दर्शन, ज्ञान, चारित्र व्यवहार पर्याय तो अधूरी है, इसलिये उसमें पुरुषार्थ तो करना ही है, परन्तु तू वह सब कर्ताबुद्धि छोड़ दे। तू ज्ञाता है। वह कर्ताबुद्धि छोड़ दे। तो भी पुरुषार्थ तो उसमें करनेका रहता है।

निश्चय और व्यवहार दोनों जानने योग्य है। दृष्टि एक चैतन्य पर रख। आदरणीय एक चैतन्य है। दृष्टिके बलसे पुरुषार्थ होता है। इसलिये तू अखण्ड ज्ञायक है। साधकभाव व्यवहार है। वह बीचमें आये बिना रहता नहीं। तू कोई भी पर्याय है, उस पर्यायका निश्चय दृष्टिसे तेरा अकर्तास्वभाव है, तेरे स्वभावका कर्ता अनादिअनन्त पारिणामिकभावसे है। ऐसा कहना है।

मुमुक्षु :- अर्थात् वहाँ ज्ञायककी दृष्टि करानेको...।

समाधान :- ज्ञायककी दृष्टि करनेको। बन्ध-मोक्षके जो विकल्प आये, वह विकल्प भी शुभभाव है। वह बन्ध-मोक्षकी जो पर्याय हैं, वह पर्याय भी प्रगट होती है मोक्षकी। इसलिये तू पर्याय पर दृष्टि मत करना। वह साधकभाव बीचमें आता है। मोक्ष है वह भी एक पर्याय है। इसलिये तू ज्ञायक जाननेवाला है, अखण्ड शुद्धात्मा है। ऐसा कहना है। पर्याय जितना ही तेरा स्वरूप नहीं है। तेरा स्वरूप अखण्ड है।

जो बादमें प्रगट होता है, तेरा मूल स्वरूप तो अनादिअनन्त है। परन्तु उसमें द्रव्यदृष्टि करे तो ही शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। साधकभाव तो बीचमें आता है। साधकभाव व्यवहार है, ऐसा कहना है। सब अधूरी पर्याय व्यवहार है।

मुमुक्षु :- यानी वहाँसे लक्ष्य छुड़ाना है।

समाधान :- लक्ष्य छुड़ाते हैं। लक्ष्य छुडाकर अखण्ड द्रव्य पर दृष्टि करवाते हैं। ज्ञान तो सबका (होता है)। अनादिअनन्त है उस पर दृष्टि कर, ऐसा कहना है।

मुमुक्षु :- गुरुदेवकी उस पर बहुत प्रसन्नता थी। इसलिये लगा, गुरुदेवका जाननेपर बहुत (वज़न था)।

समाधान :- तू सब जान, तू कर्ता नहीं है। जान, ज्ञायक हो। सब जान। अधूरी पर्याय, पूर्ण पर्याय उन सबका तू जाननेवाला ज्ञायक है। तू सब जान।

मुमुक्षु :- जाननेकी पर्यायको भी करनी नहीं है, ऐसे लिया। उसका जाननेवाला है, ऐसे लिया। इसलिये बहुत..

समाधान :- जाननेवाली पर्यायका भी तू जाननेवाला है। इसलिये उसमें व्यवहार नहीं है, ऐसा कहनेका आशय नहीं है। परन्तु वस्तुदृष्टि करवानी है। वस्तुका मूल स्वरूप बताते हैं। इसलिये वह पर्याय आत्मामें नहीं है, ऐसा नहीं। वह जाननेकी पर्याय उसमें होती नहीं, ऐसा नहीं है। वह सब व्यवहार है, लेकिन तू दृष्टि... मूल वस्तुका स्वरूप बताते हैं। अकेला ऐसा हो तो ये बन्धके विभावभाव होते ही नहीं। तो अकेली मोक्षकी पर्याय हो। यदि ऐसा हो तो ये जाननेका स्वभाव जो दिखता है, वह भी... आत्मा कुछ जान सके नहीं। यदि जाननेका स्वभाव ही न हो तो। वह सब जाननेकी पर्याय है। परन्तु तू दृष्टि तेरे स्वकी ओर कर, ऐसा कहना है।

तेरा स्वपरप्रकाशक स्वभाव है, परन्तु दृष्टि तेरे द्रव्य पर कर, ऐसा कहना है। आचार्यदेव, गुरुदेव सब एक ही बात करते हैं। दृष्टि तू शुद्धात्मा पर कर। पर्याय उसमें होती है, साधकदशा उसमें होती है, स्वपरप्रकाशक तेरा स्वभाव है। परन्तु दृष्टि तू परसे हटाकर एक अखण्ड ज्ञायक पारिणामिकभाव पर कर। पारिणामिकभाव अर्थात् एक भाव पर नहीं, लेकिन अखण्ड द्रव्य पर दृष्टि कर।

मुमुक्षु :- इतना तत्त्व मिला, हम हमसे हो सके उतना प्रयत्न, चिंतन, मंथन सब करते भी हैं, परन्तु हमारे व्यवहारिक जीवनमें चलते-फिरते, कोई जूठ बोलनेका भाव, मायाचारीके भाव होते हो, अथवा सामनेवाले जीवको दुःख होगा ऐसा जाननेकी दरकारका भाव न रहता हो, वह सब तो बाह्य है। तो वह आत्मसाधनामें कुछ अवरोधरूप हो या पात्रताकी (क्षति है)?

समाधान :- स्वयं समझ लेना कि कैसे भाव आते हैं। मुमुक्षुकी भूमिकामें आत्मार्थका प्रयोजन मुख्य (होता है)। आत्मार्थीको न शोभे ऐसे मर्यादा तोड़कर ऐसे विचार आत्मार्थीको होते नहीं। ऐसे कार्य भी आत्मार्थीको नहीं होते। जो आत्मार्थका पोषण हो, आत्मार्थताकी मुख्यता रहे ऐसे भाव आत्मार्थीको होते हैं। अपनी आत्मार्थताकी मर्यादा टूट जाय ऐसे भाव आत्मार्थीको होते नहीं। फिर कैसे आते हैं, उसका विचार स्वयंको करना रहता

है। उसमें कचास हो तो अपनी पात्रता बढानी। आत्मार्थताका मुख्य प्रयोजन (होना चाहिये)। आत्मार्थताको कोई हानि पहुँचे ऐसी मर्यादा तोड़कर ऐसे विचार आत्मार्थीको होते नहीं।

मुमुक्षु :- .. जब मोक्षमें जाते हैं, वहाँ धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकायका अंत आ जाता है, वहाँसे आगे नहीं जा सकते। बराबर? धर्मास्तिकाय जो गतिमें उदासीन सहायतारूप होता है, वहाँ स्थिर हो जानेके बाद धर्मास्तिकाय कैसे मदद करता है?

समाधान :- वह तो ऐसा है कि जो चलते हुए गतिमान हो उसे निमित्त होता है। गतिमान न हो उसे निमित्त होता है, ऐसा नहीं है। जो गतिमें हो उसे निमित्त होता है। जो चलनेके बाद स्थिर हो उसे अधर्मास्तिकाय निमित्त बने। गतिमानको धर्मास्तिकाय निमित्त होता है। ऐसा होता है। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। ...

मुमुक्षु :- विहार करते हैं तब एक भाई छटपटाते हैं, गर्मीका दिन था, छटपटाता है और कहता है कि बचाओ, बचाओ, बचाओ, मुझे थोड़ा पानी दो। भावलिंगीके पास कमंडलु उपकरण होता है, उसमें पानी था। तो उन्हें देना योग्य है या अयोग्य है? पानी देना चाहिये कि नहीं देना चाहिये? विचित्र प्रश्न पूछ रहा हूँ।

समाधान :- भावलिंगी मुनि स्वयं तो भिन्न होकर स्वरूपमें लीन होकर बसते हैं। सर्व प्रकारके विकल्प छूट गये हैं। भिन्न हो गये हैं। सर्व कार्योंसे छूट गये हैं। लौकिज्ञक कार्योंसे छूट गये हैं। ऐसे कार्योंमें उन्हें उस प्रकारका विकल्प नहीं आता है। उनका उपयोग बाहर नहीं होता है। उस जातके कार्योंमें वे जुड़ते नहीं। छूट जाते हैं। यथार्थ मुनिदशा छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते हैं। ऐसे कार्योंसे छूट गये हैं। वह सब कार्य गृहस्थोंके हैं। उस कार्यसे छूट गया है।

जिसने यथार्थ मुनिपना अंगीकार किया, छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते हुए, केवलज्ञानकी तलहटी, केवलज्ञान पूर्ण कृतकृत्य दशाकी तलहटीमें खड़े हैं, मुनिदशा यानी छठवें-सातवें गुणस्थानमें झुलते मुनिराज हैं। ऐसे बाह्य कार्योंसे छूट गये हैं। और उस जातका विकल्प नहीं होता है, भिन्न हो गये हैं।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

गर्भ कल्याणक पूर्व क्रिया
ता. २०-१-२०२४

मंगलाचरण

चत्तारि मंगलं, अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलीपण्णत्तो धम्मो मंगलं

चत्तारि लोगुत्तमा, अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा,

केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

चत्तारि शरणं पव्वज्जामि, अरहंते शरणं पव्वज्जामि, सिद्धे शरणं पव्वज्जामि,

साहू शरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं शरणं पव्वज्जामि ।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी ते तरे,

सकल कर्मनो आणे अंत, मोक्ष तणा सुख लहे अनंत,

भाव धरीने जे गुण गाय, ते जीव तरीने मुक्ति जाय,

संसारमांहि शरण चार, अवर शरण न कोई, जे नर-नारी आदरे, तेने अक्षय अविचल पद होय ।

अंगूठे अमृत वसे, लब्धि तणा भंडार, ज्यां गुरु गौतमने समरिये तो सदाय मन वांछित फल दातार।

श्रोता : माताजी ! गुरुदेव के वचनामृत में आता है कि भरत चक्रवर्ती भोजन के समय मुनिराज की प्रतिक्षा आहारदान हेतु करते थे। प्रथम मुनिराज पधारे तब हमारे आंगन में कल्पवृक्ष खिला ऐसा कहकर और भक्तिपूर्वक आहारदान देते है। गुरुदेव के बोल में यह पुनः इस प्रकार मुनिराज का अनुपम दासत्व और एक ओर गुरुदेव ने ऐसा कहा कि 'तू भगवान है' तो भगवान और दासत्व में दोनों की महिमा मेल किस प्रकार का है। कृपा करीने हमें समझाईये।

पूज्य बहिनश्री : भरत चक्रवर्ती सम्यग्दृष्टि थे, गुरुदेव द्रव्य अपेक्षा से तू भगवान जैसा है, ऐसा कहते थे। वस्तु द्रव्य आत्मा तो भगवान जैसा है। उसका स्वभाव भगवान जैसा है। लेकिन पर्याय में विभाव हुआ है। पर्याय में अशुद्धता है। द्रव्य अपेक्षा से शुद्ध है। और द्रव्य अपेक्षा से जैसे सिद्धभगवान ऐसा ही आत्मा है। और द्रव्य अपेक्षा से और पर्याय में तो गृहस्थ है, सम्यग्दृष्टि है। भरत चक्रवर्ती अभी स्वयं गृहस्थाश्रम में है। और मुनिराज पधारे तब आहार के समय आहारदान की भावना भाते है। कोई मुनिराज पधारे उनको आहार देना ऐसी भावना गृहस्थाश्रम में श्रावकों को आती है। क्योंकि अपूर्णता है, साधना है। यह द्रव्य अपेक्षा से सिद्ध भगवान जैसी उनको श्रद्धा प्रकट हुई है।

सम्यग्दर्शन प्रकट हुआ है। ज्ञायक की धारा प्रकट हुई है। लेकिन पर्याय में अभी अपूर्णता है। चौथी भूमिका है। अभी भूमिका में आगे जाना शेष है। इसलिये मुनिराज जिस भूमिका में आगे गये है, स्वरूप की रमणता कर रहे है, छठवें-सातवें गुणस्थान में झूल रहे है। मुनिराज, सर्व संग परित्याग करके एक आत्मा में ही झूलते है। उस भूमिका से बाहर आये तब कोईबार शास्त्र स्वाध्याय द्रव्य, गुण, पर्याय आदि के विचारो आदि कोई शुभभाव में रुकते है। शेष क्षण में क्षण में सातवें में जाते है। ऐसे मुनिराज को देखकर अधिक भावना भाते है। आहारदान का समय हो तब कोई मुनिराज पधारे ऐसा चक्रवर्ती स्वयं छह खंड की ऋद्धि, जिनके पास में चौद रत्न और नव निधियाँ है। ऐसे चक्रवर्ती भी आहारदान की भावना भाते है। कोई मुनिराज पधारे और मुनिराज आंगन में पधारे तो मानते है कि मेरे आंगन में कल्पवृक्ष खिल गया ऐसी भावना उनको आती है।

शुभभाव में यह देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति होती है और अंतर में आत्मा शुद्धात्मा भगवान जैसा है ऐसी श्रद्धा भी होती है। दोनों साथ में है। पर्याय में अपूर्णता है, तो देव-गुरु-शास्त्र पर भक्ति आये बिना रहेती नहीं है। धन्य मुनिदशा जिन्हें आये, मुनिदशा का विचार करते भरत चक्रवर्ती को ऐसी भावनाएँ आती है।

श्रोता : पर्याय में दासत्व

पूज्य बहिनश्री : पर्याय में दासत्व तो मुनिराज का दास हूँ, मैं तो देव-गुरु-शास्त्र का दास हूँ। जो मारा से बड़े है सभी का मैं दास हूँ। यह गुण में बड़े उन सभी का मैं दास हूँ, मैं द्रव्य अपेक्षा से चाहे भगवान प्रभुत्व है। लेकिन पर्याय में मैं पामर हूँ, कहाँ मुनि की दशा और कहाँ मेरी दशा है। ऐसा स्वयं को पर्याय में पामररूप मानते है। मैं तो मुनि का दास हूँ। पर्याय में दासत्वपना है और द्रव्य अपेक्षा से मैं भगवान जैसा हूँ, ऐसा मानते है। दोनों जाति की परिणति साथ में ही होती है। श्रद्धा में मैं आत्मा शुद्ध हूँ और पर्याय में मुझे अभी अशुद्धता है, मारी पर्याय में अपूर्णता है। मुनि की दशा कहाँ और मेरी दशा कहाँ, मैं तो मुनि का दास हूँ। ऐसी भावना सम्यग्दृष्टि को होती है। कब मेरी ऐसी दशा हो और कब ऐसा मुनिपना अंगीकार करूँ, ऐसी भावना होती है। चक्रवर्ती स्वयं मुनिराज को नवधा भक्ति से आहार देते है।

श्रोता : पर्याय का ज्ञान करने पर उसमें शिथिलता नहीं आ जायेगी ?

पूज्य बहिनश्री : थोड़ी (अल्प) शिथिलता नहीं आयेगी। जो द्रव्य जो जैसा द्रव्य है ऐसी ही श्रद्धा है उसमें शिथिलता नहीं आती। तो श्रद्धा की परिणति चलती है। ज्ञायक की परिणति चलती है और पर्याय में दासत्वपना, दोनों साथ रहता है। उसमें तनिक भी बदलाव होता नहीं है। पर्याय में दासत्वपना मानते है। यह दासत्वपने में भी बदलाव आता नहीं है और स्वयं को प्रभु माना है उसमें भी बदलाव आता नहीं है। दासत्व के समय तनिक अल्प दासत्व ऐसा नहीं है। दासत्व के समय पूर्णरूप से अर्पणता करता है और अंदर में प्रभुत्व में बिलकुल भी मोळाश मोळापणुं कमजोरी आती नहीं है।

श्रोता : दोनों एक साथ में रह सकते है।

पूज्य बहिनश्री : दोनों एकसाथ में रह सकते है। भक्ति करते है पूर्णरूप से भक्ति और मैं तो भगवान जैसा हूँ, मुझे और यह दासपना ऐसा साथ करके दासत्वपने को कम करते है ऐसा भी करते नहीं है।

श्रोता : पर्याय में अधिक याद करने जाता है और उसकी दृष्टि उसमें मंद हो जाती है।

पूज्य बहिनश्री : ऐसा बिलकुल बनता नहीं है। पर्याय में अवधारणा है और द्रव्य में भी अवधारणा है। दोनों में अवधारणा करते समय जिस समय जिस प्रकार का राग आता है। उसमें यह पृथक रहकर यथार्थ उसको उस प्रकार की भक्ति आती है। स्वयं उससे पृथक रहता है और पर्याय में जो राग आता है। उस राग में प्रशस्त राग है। उसमें उसे भक्ति आती है।

श्रोता : उससे पृथक होकर ज्ञान यथार्थ होता है।

पूज्य बहिनश्री : पृथक रहकर ज्ञान करता है, उसमें भक्ति भी करता है। दोनों करते है।

श्रोता : अकेला ज्ञान करता है ऐसा नहीं है।

पूज्य बहिनश्री : अकेला ज्ञान ही करता है ऐसा नहीं, भक्ति भी आवे है। चक्रवर्ती स्वयं भावना भाते है और स्वयं यह रखते है। किसी मनुष्यों को किसी को हुकम करे उनको स्वयं ही पूर्ण ऐसी भावना स्वयं उनको आती है।

श्रोता : भावना के साथ में वर्तन में भी इस प्रकार से।

पूज्य बहिनश्री : वर्तन भी ऐसा ही होता है। ऐसी निश्चय व्यवहार की संधी है। यह दोनों कैसे रहते होंगे, विचित्र लगे लेकिन वे दोनों साथ में रहते है।

श्रोता : विभाव तो विचित्र ही लगते है, ऐसे दोनों के साथे कोई विषय के साथे दासत्व और पुनः मैं भगवान हूँ।

पूज्य बहिनश्री : हाँ दोनों कैसे रहते होंगे ? दोनों रहते है। ऐसी विचित्र बातें दोनों परिणति में साथ

रहते हैं।

श्रोता : पुनः पर्याय अपेक्षा से शत प्रतिषत दासत्वपना है तब और द्रव्य अपेक्षा से शत प्रतिषत मैं परमात्मा हूँ।

पूज्य बहिनश्री : परमात्मा हूँ ऐसा स्वीकार करता हूँ और भेदज्ञान की धारा और द्रव्य पर जोर रहता है। ठीक है और पर्याय में दासत्वपना रहता है। भक्तियोग में यह कार्य करता है और परिणति जोरदार रहती है।

श्रोता : उपयोग में उपयोग उपयोग अनुसार रहता है और परिणति में मैं परमात्मा हूँ यह बिल्कुल जोरदार रहता है।

पूज्य बहिनश्री : बिल्कुल जोरदार रहता है।

श्रोता : उसे अस्तित्व का भावभासन होता है कि वेदन में भी आता है ?

पूज्य बहिनश्री : वेदन में नहीं उसका भाव उसका लक्षण पहिचाना जाता है। उसका भावभासन होता है। जिस में जाननेवाले को जड़ जानने में आता नहीं है ऐसा जो जाननहार वह मैं हूँ ऐसा उसे भाव का भासन होता है। उसे वेदन होता है। ऐसा नहीं लेकिन यह अभी सहजरूप नहीं है। प्रयत्न करता है इस प्रकार का ऐसा। सहजरूप से दशा जो ज्ञायक को पहिचाने तब होता है उसमें तो प्रयत्नरूप होता है। लेकिन यह बिना प्रयत्न किये कुछ भी होता नहीं है। प्रयत्न करे तो सहज में जाता है। ऐसा ही ऐसा सहज में आता नहीं है। ऐसा अनादि से जो अंतर्मुहूर्त में किसी को हो वह अलग बात

है। शेष पुरुषार्थ करे तो ही आगे जा सकता है कि जो सहज स्वरूप है वह मैं हूँ ऐसा उसको ज्ञान में लेता है। लेकिन उस रूप से ग्रहण करने के लिये प्रयत्न करता है।

श्रोता : भावभासन में जो ग्रहण किया है वह यथार्थ ग्रहण किया ऐसा उस समय उसे सुनिश्चित होता है।

पूज्य बहिनश्री : और शरूआत में प्रयत्न करे तब सुनिश्चित होता है कि यह ज्ञाता है। उसके अतिरिक्त मैं कोई अन्य नहीं हूँ। जो ज्ञाता है। वह ही मैं हूँ। अन्य कोई ऐसा राग का स्वरूप कि यह अन्य कोई स्वरूप, जड़ का स्वरूप कि राग का स्वरूप तो कोई स्वरूप मेरा नहीं है। जो आकुलतारूप है। वह स्वरूप मेरा नहीं है। जो दुःखरूप है वह पोता को स्वयं का स्वरूप दुःखरूप लगता नहीं है। इसलिये यह स्वरूप मेरा नहीं है। जो दुःखरूप लग रहा है। जो आकुलतारूप लागता है वह ही स्वरूप स्वयं का नहीं है। जिसको जिसकी चाह नहीं वह आकुलतारूप वह स्वरूप मेरा है ही नहीं। स्वयं का स्वरूप स्वयं को दुःखरूप होता नहीं है। इसलिये जो ज्ञाता जो ज्ञायक स्वरूप मुझे दुःखरूप लगता नहीं वह सहज ही ज्ञाता है। वह मैं ही हूँ। वह मेरा ही स्वरूप है। वह ज्ञाता अन्य कोई नहीं वह मैं ही हूँ। तिर्यंच ग्रहण कर सकता है। और ऐसा निश्चय उसे आ सकता है कि ज्ञाता वह मैं ही हूँ और ज्ञाता में ही सभी समाहित है। ज्ञाता का स्वरूप ही मुझे सुखरूप है। अन्य कोई सुखरूप नहीं है।

श्रोता : भावभासन में जो ज्ञायक आया उसमें कोई अंतर नहीं, उसे कैसे सुनिश्चित किया जाय ?

पूज्य बहिनश्री : यह ... स्वरूप ज्ञायक का स्वरूप वह ही मेरा स्वरूप है। उसमें अंतर नहीं उसको निर्णय होता है। चाहे सहजरूप सहजदशा नहीं लेकिन विकल्प से लेकिन ऐसा निर्णय उसको आ सकता है कि यह सत्य ही है। मिथ्या नहीं है।

श्रोता : ज्ञानी को जैसे सविकल्पदशा में ज्ञायक प्रवर्तता रहता है। उसी प्रकार अज्ञानी को ऐसी दशा में मार्ग ज्ञायक प्रवर्तता होगा ?

पूज्य बहिनश्री : ज्ञायक ही ज्ञानी को सादृश्य (तरवतो) होता है। ऐसा उसे दृष्टि के सामने नहीं है। ज्ञानी को तो सहजदशा में सादृश्य (तरवरे) है। उसे कोई विचारना पडता नहीं है उसे कोई विचार करके निर्णय करना पड़ता नहीं है। उसे तो सहजरूप ज्ञायक है। वह ज्ञायक की धारा चालती है। कर्ताबुद्धि छूटकर ज्ञायक को ज्ञायकधारा उसे सहजरूप से निरंतर प्रतिक्षण सोचे बिना सहज परिणति से चलती है। अब ज्ञानी की दशा पृथक है। अनादि की एकत्वबुद्धि उसे अज्ञानदशा में कोई विचार बिना चली रही थी। ज्ञानी को ज्ञान की दशा सहजरूप चली रही है। इसप्रकार वह ऐसा निर्णय करता है। ऐसा उसे सहज नहीं है उसने सत्य निर्णय किया है। लेकिन उस प्रकार ज्ञायक की ज्ञानधारा चलती नहीं है उसे बारम्बार सोचना पड़ता है। विचार करके याद करना पड़ता है। एकत्वबुद्धि हो जाती है। और विचार करके निश्चित किया कि ज्ञायक वह मैं ऐसी परिणति नहीं सहज परिणति एकत्व हो गई है। उसने निश्चित् किया कि ज्ञान वह मैं, ज्ञायक वह मैं, यह ज्ञायक वह मैं, लेकिन परिणति में उसका कार्य में अंदर परिणति में एकत्वबुद्धि हो गई है। इसलिये उसे बारम्बार विचार करना पड़ता है। ज्ञानी जैसी सहजदशा उसकी होती नहीं है।

उसका निश्चित निर्णय में करे तब ज्ञायक ऐसा उसका जब निर्णय करे तब ऐसा लगे। पुनः एकत्वबुद्धि की परिणति में पुनः बारम्बार उसकी परिणति को विचारना पड़ता है। प्रयत्न जिस प्रकार चलता हो उस प्रकार उसकी एकत्वबुद्धि हो गई है। अर्थात् सहजदशा नहीं लेकिन निर्णय यथार्थ कर सकता है। जिज्ञासा की भूमिका में यथार्थ आत्मा कैसा होता है वह यथार्थ निर्णय कर सकता है। जो यथार्थ निर्णय न कर सके तो उसे कोई एकदम प्रयत्न बिना कोई ज्ञानदशा सहज आती नहीं है। यह तो जिसे जिज्ञासा हो, आत्मा का प्रयोजन हो वह यह प्रयत्न करे, उसे ही ज्ञानदशा सहजरूप होती है। और वह प्रथम निर्णय कर सकता है। सत्पुरुष का निर्णय कर सकता है, यह ज्ञानी ही है। यह गुरु ही है। कोई अपूर्व बात दर्शा रहे है। ऐसा आत्मार्थी हो वह निश्चय कर सकता है। उसी प्रकार आत्मा को लेकिन जो आत्मार्थी हो वह नक्की कर सकता है कि यह आत्मा ही ज्ञायक है। जो स्वरूप मुझे स्वयं को सुखरूप और ज्ञाता सहज जान रहा है वह ही आत्मा है। यह जो दुःखरूप वेदन हो रहा है। जो आकुलतारूप वेदन है वह मेरा स्वरूप नहीं है। स्वयं का स्वरूप स्वयं को दुःखरूप होता ही नहीं है। लेकिन उस दुःख को पकड़ सके तो और प्रिय ऐसे अशुभभाव में दुःख लगता है। पुनः शुभ में उसे सुख लगने लगता है। उस दुःख को पकडे वह दुःख कहाँ है ? उसे विभाव कहाँ है ? उसे ग्रहण करे तो उसे ज्ञायक को यह ज्ञायक सत्य स्वरूप है। यह ज्ञायक वह मैं हूँ , उसके अतिरिक्त अन्य कोई मेरा स्वरूप नहीं है। ज्ञायक को पहिचाने तो विभाव को पहिचाने, विभाव को पहिचाने तो ज्ञायक को पहिचानता है।

श्रोता : ऐसी बात प्रकट तो विभाव है। उसके पासे प्रकट विभाव है।

पूज्य बहिनश्री : विभाव प्रकट है, ज्ञायक प्रकट नहीं है। ज्ञायक स्वभाव वह तो प्रकट है। उसकी पहिचान करता नहीं है। लेकिन वह समझता है कि यह सभी यह स्वरूप मेरा नहीं है। आत्मा का स्वरूप शांति ही होता है। आत्मार्थी को जिज्ञासा होती है, विचार आता है कि यह स्वरूप ऐसा दुःखमय स्वरूप आत्मा का होता नहीं है, आत्मा का स्वरूप कोई पृथक ही होता है। कोई विचार करके निश्चय करे, गुरु के पास सुने कि आत्मा का स्वरूप क्या है। उसे विचार आने का ... होता है।

श्रोता : यदि मन में कषाय व विभाव हो वह दुःखरूप है। इतना उसका ज्ञान सुख में होता नहीं, उसे ग्रहण करे तो पश्चात् पूर्वका अंतर भेद कर सकता है।

पूज्य बहिनश्री : अधिक अंतर कर सकता है, मंद कषाय में यदि शांति लगे तो अंतर कर सकता नहीं है। उपर उपर से ठीक कहे ज्ञायक ऐसा कहे लेकिन वह मंद कषाय का अंतर कर सकता नहीं है ओर वास्तविक ज्ञायक की पहिचान कर सकता नहीं है।

श्रोता : आत्मार्थीपना तब वास्तविक प्रकट हुआ कहा जाय कि आत्मा आत्मा को लगकर ज्ञान में आये तो मन का मंद कषाय उपर आकुलतारूप उसे वेदन अर्थात् कि उसे उसका वेदन खयाल में नहीं है। किन्तु यह आकुलता है।

पूज्य बहिनश्री : वह ज्ञान में ग्रहण होना चाहिये, कि आत्मार्थी हो उसे ग्रहण हुए बिना रहता नहीं है। विचार से निर्णय करे युक्ति से निर्णय करे, गुरु से तय करे, फिर स्वयं अंतर स्वभाव से स्वभाव को पहिचान कर निश्चय करे।

बोलीये अनुभवऋद्धिधारक भगवती मात की जय हो,
स्वानुभूतिऋद्धि मार्ग प्रकाशक कृपालु कहानगुरुदेव की जय हो.....

ट्रेक-२४३

मुमुक्षु :- ... सत्पुरुषकी सब आज्ञा मानना चाहिये। तो आज्ञा कितनी-कितनी प्रकारकी होती है? क्योंकि वे कहते हैं कि कोई प्रकारकी भी अपात्रता रह जाती है तो मुमुक्षु कल्याणके योग्य नहीं होता है।

समाधान :- कितने प्रकारकी आज्ञा क्या? सत्पुरुषकी आज्ञा तो अपनी पात्रता देखकर आज्ञा करते हैं। आज्ञा कितने प्रकारकी होती है? .. ज्ञानीका आशय ग्रहण करना चाहिये। ज्ञानी कहते हैं, क्या कहते हैं? आशय ग्रहण करके अपनी परिणति प्रगट करना चाहिये। अनेक जातमें कहाँ-कहाँ जीव रुक जाता है। स्वच्छन्द, मताग्रह, अपनी मानी हुयी कल्पनाओंमें (अटक जाता है)। सत्पुरुषका आशय३ क्या है, वह आशय ग्रहण करके वस्तुका स्वरूप समझना चाहिये। यथार्थ समझकरके क्या करना चाहिये उसका आशय ग्रहण करना चाहिये। वे क्या कहते हैं?

स्वयं निर्णय करे उसे सत्पुरुषके आशयके साथ मिलान करना। ज्ञानीका क्या आशय है? मैं क्या मानता हूँ? आशय यथार्थपने जो निर्णय करता है, उसके साथ मिलान करता है। क्या कहते हैं, यह समझना चाहिये। उस प्रकार अपनी परिणति प्रगट करनी चाहिये। वे कहते हैं, उस प्रकार-से। ... ग्रहण करके अपनी परिणति प्रगट करना चाहिये। पुरुषार्थ करना चाहिये। पुरुषार्थकी मन्दता होवे तो ज्ञानी जो कहते हैं उस पर प्रतीत करनी चाहिये। और भावना रखनी चाहिये कि मैं कैसे आगे जाऊँ? ऐसा पुरुषार्थ करना चाहिये।

अपने मतमां कहीं न कहीं अटक जाता है। ज्ञानीका आशय क्या है? देव-शास्त्र-गुरु क्या कहते हैं? उसे ग्रहण करके उस अनुसार अपनी परिणतिको, अपने पुरुषार्थको उस अनुसार चालू करे तो यथार्थ मार्ग उसे प्रगट होता है। उसका आशय ग्रहण करना चाहिये। चारों तरफ-से ज्ञानी क्या कहते हैं? उनका आशय क्या है? उसे ग्रहण करके अपनी परिणति कर लेनी चाहिये।

... वह ज्ञानीका आशय ग्रहण कर लेता है। देव-गुरु-शास्त्र क्या कहते हैं, वह ग्रहण कर सकता है। उसकी पात्रता ऐसी होती है। यदि पात्रता नहीं होवे तो अपनी मति कल्पना-से रुक जाता है।

मुमुक्षु :- ४७ शक्तिओंका स्मरण करते हैं। अपने स्वभावकी महिमा लानेके लिये क्या बारंबार शक्तियोंका स्मरण करना चाहिये? उससे स्वभावकी महिमा...

समाधान :- ... स्मरण करता है... मुमुक्षुको क्या करना? ज्ञानी क्या कहते हैं, उसका आशय ग्रहण करना चाहिये। वे ऐसा करते थे, इसलिये हमें भी ऐसा करना चाहिये, ऐसा अर्थ नहीं है। शक्तियोंको ग्रहण करनेमें तो उसका लाभ है, कोई नुकसान नहीं है। ४७ शक्तिका स्मरण करके उसका अभ्यास करे तो आत्म स्वरूपकी महिमा आती है। ऐसा करनेमें कुछ (दिक्कत नहीं है), कर सकता है। उसमें कोई ऐसा नहीं होता।

गुरुदेव ऐसा करते थे, इसलिये ऐसा करना, ऐसा कुछ नहीं है। जिसको जो रुचे सो करना। कोई ज्ञायक-ज्ञायक करता है, तो भेदज्ञान करनेका अभ्यास करना। उसके साथ शास्त्रमें क्या (कहा है)? स्वयंको शंका हो तो निःशंक होनेके लिये कोई तत्त्व विचार स्वयंको जो रुचे सो करना। गुरुदेव ऐसा करते थे इसलिये ऐसा करना, उसका कोई अर्थ नहीं है। स्वयंको यदि उसमें महिमा आती है तो वह करना। उसमें तो लाभ है। अपनेको लाभ लगे तो वह करना। मुझे किसमें रस आता है, उस अनुसार करना।

मुझे क्या स्मरण करना? मुझे ज्ञायकका अभ्यास करनेके लिये किसका स्मरण करना? चैतन्यकी शक्तियाँ विचारनी। ४७ शक्तियाँ विचारनी, ज्ञायकका विचार करना, उसका सत्य स्वरूप क्या? शास्त्र अनेक प्रकार क्या आते हैं? स्वयंको जहाँ रुचि हो वह करना।

गुरुदेव तो महापुरुष था। उनकी परिणतिमें जो उन्हें लगता था वह करते थे, इसलिये दूसरोंको ऐसे ही करना, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। उनका श्रुतज्ञान तो अपूर्व था। उन्हें तो श्रुतकी धारा अपूर्व थी। अनेक जातकी उन्हें श्रुतकी लब्धियाँ प्रगट हुयी थी। उन्हें उसमें रस आता था तो ऐसा करते थे। इसलिये सबको ऐसा करना ऐसा उसका अर्थ नहीं है। वे तो ऐसा विचार करते थे, बाकी तो अनेक जातका चिंतवन उन्हें चलता था। वह एक ही चिंतवन था, ऐसा नहीं है। उन्हें तो अनेक जातका (चिंतवन चलता था)। उन्होंने तो शास्त्रोंके शास्त्र खोल दिये। शास्त्रोंका रहस्य खोल दिया। उन्हें तो अन्दर शास्त्रोंका समुद्र खुला था।

उसमें-से वे बारंबार उसका स्मरण करते थे। उन्हें उसमें रस आता था। उन्हें अन्दर शास्त्रमें-से आनन्द आता था। एक ४७ शक्तियोंके लिये नहीं, कितनी गाथाओंका उन्हें आनन्द आता था।

मुमुक्षु :- बहुत गाथामें कहते थे, यह गाथा तो अपूर्व है, यह गाथा तो अपूर्व है।

समाधान :- हाँ, उन्हें तो बहुत गाथाओंका आनन्द आता था।

मुमुक्षु :- बहुत अपेक्षाएँ आती हैं, ... बुद्धि तो थोड़ी है, अपेक्षाएँ बहुत हैं,

उसके लिये क्या उपाय है?

समाधान :- अपेक्षाएँ बहुत हैं। मूल द्रव्यदृष्टिका प्रयोजन, मुक्तिका मार्ग जिससे सधे वह ग्रहण करना। द्रव्य-पर्यायका, निश्चय-व्यवहारका सम्बन्ध कैसे है, वह विचारना। मैं शाश्वत अनादिअनन्त द्रव्य हूँ, उसमें पर्यायकी साधना कैसे होवे? पर्याय अधूरी है, द्रव्य पूर्ण है, उसका मेल कैसे होवे? यह सब सन्ध करके, शास्त्रमें बहुत अपेक्षाएँ आती है, उन सब अपेक्षाओंका सम्बन्ध करके आत्मामें जैसे लाभ हो, वैसा करना। द्रव्यानुयोगमें बहुत आता है। उसको यथार्थ समझ लेना चाहिये।

अनादि-से भ्रम हो रहा है, एकत्वबुद्धि-पर्यायमें दृष्टि है। द्रव्य अनादिअनन्त शाश्वत शुद्ध है, उसमें पर्यायकी अशुद्धता कैसे है? उसकी साधना कैसे होवे? साध्य पूर्णका लक्ष्य करके और पर्यायकी साधना-शुद्धात्मामें शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। सम्यग्दर्शन होवे तो तुरन्त केवलज्ञान नहीं होता है। बीचमें साधकदशा रहती है। तो द्रव्यदृष्टि प्रगट करके स्वानुभूति और सम्यग्दर्शन प्रगट होवे तो भी लीनता बाकी रहती है। केवलज्ञान (होने तक)। साधक और साध्यका कैसे मेल है? यह सब समझकर सब अपेक्षा समझनी चाहिये। द्रव्य-गुण-पर्यायकी सब अपेक्षा समझकर, मुख्य मुक्ति मार्ग कैसे है वह ग्रहण करना चाहिये।

द्रव्यदृष्टिके प्रयोजनके साथ निश्चय-व्यवहारका सम्बन्ध कैसे है, यह समझकर सब समझना चाहिये। द्रव्यदृष्टि मुख्य रखकर उसमें पर्याय भी अशुद्ध है, कैसे स्वानुभूति होवे? उसकी पूर्णता होवे, उसकी लीनता होवे, यह केवलज्ञान तक ऐसा सब मेल करके सब समझना चाहिये।

मुमुक्षु :- पर्याय गौण करके भिन्न कही जाती है या वास्तवमें वह भिन्न होकरके दृष्टिके विषयको विषय बनाती है?

समाधान :- वास्तविक भिन्न नहीं है। द्रव्यदृष्टि मुख्य होती है तो उसमें पर्याय गौण हो जाती है। वह (-पर्याय) अंश है, वह (-द्रव्य) अंशी है। अखण्ड द्रव्य पर दृष्टि जाने-से पर्यायका लक्ष्य गौण हो जाता है। द्रव्य और पर्याय बिलकूल भिन्न होवे तो पर्याय द्रव्य हो जाती है। पर्याय ऐसे नहीं होती है कि द्रव्यका कोई आश्रय नहीं है पर्यायको और पर्याय निराधार है, ऐसा तो नहीं है।

पर्याय एक अंश है इसलिये स्वतंत्र है। परन्तु वह अंश अंशीका अंश है। इसलिये उसको गौण रखकरके समझना चाहिये।

मुमुक्षु :- गौण रखे?

समाधन :- गौण रखे। दृष्टिके ज़ोरमें द्रव्य मुख्य है तो पर्याय गौण है। पर्याय और द्रव्य वैसे स्वतंत्र नहीं है। वह अंशरूप-से स्वतंत्र है। पर्यायको द्रव्यका आश्रय

रहता है। कैसे स्वतंत्र है, यह अपेक्षा समझनी चाहिए।

मुमुक्षु :- ... फरमाया कि सम्यग्दर्शनके विषयमें सम्यग्दर्शनकी पर्याय नहीं है।

समाधान :- सम्यग्दर्शन पर्याय विषयमें नहीं है?

मुमुक्षु :- हाँ, विषयमें।

समाधान :- सम्यग्दर्शनका विषय नहीं है, परन्तु उसमें गौण रह जाती है। विषय तो द्रव्य है। विषय द्रव्य है। पर्यायको विषय नहीं करती, दृष्टि विषय नहीं करती है। ज्ञानमें गौणपने रह जाता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानमें रहता है, गौणपने।

समाधान :- ज्ञानमें रहता है। दृष्टि और ज्ञान दोनों साथमें रहते हैं। दृष्टि अलग और ज्ञान अलग (ऐसा नहीं)। दृष्टि सम्यक् हुयी उसके साथ ज्ञान भी रहता है। दृष्टि और ज्ञान साथमें रहते हैं, ज्ञानमें वह पर्याय गौण रहती है। दृष्टिका विषय द्रव्य है तो भी दृष्टि और ज्ञान दोनों भिन्न-भिन्न नहीं है। दृष्टिके साथ जो ज्ञान रहता है तो ज्ञानमें वह पर्याय ख्यालमें रहती है। विषय भले द्रव्य होवे, तो भी पर्याय रहती है। पर्यायका ज्ञान उसके साथ रहता है। ज्ञान, द्रव्य और पर्याय दोनोंको जानता है। ज्ञानमें द्रव्य और पर्याय दोनों साथमें रहते हैं।

समाधान :- ... सब करने लायक सर्वस्व हो तो आत्मामें सब कुछ है। बाहरमें कुछ है नहीं। बाहरमें तो एकत्वबुद्धि, अभ्यास बाहरका है इसलिये भीतरमें जाता नहीं है। तो पुरुषार्थ अपने करना पड़ता है। पुरुषार्थ करे, पुरुषार्थ करने-से होता है। अपना प्रमाद है, किसीका दोष नहीं है। गुरुदेवने तो बहुत बताया है, करना तो अपनेको पड़ता है।

मैं ज्ञायक हूँ, बाकी सब विभाव है। विभावमें सुख नहीं है, सुख आत्मामें है। ये सब आकुलतारूप है-दुःखरूप है। ऐसी प्रतीत, दृढ़तापूर्वक प्रतीत करनी चाहिये। प्रतीत करे और पुरुषार्थ करे तो होता है। बारंबार-बारंबार उसका अभ्यास करना पड़ता है। एक दफे करे ऐसा नहीं, बारंबार (करे)।

गुरुदेवने जो बताया है, जो शास्त्रमें आया है। पुरुषार्थ तो कोई रोकता नहीं है। कर्म रोकते नहीं है, कोई पदार्थ रोकते नहीं, अपने कारण-से रुक जाता है। बाहरमें रुचि है। स्वरूपमें रुचि करनी चाहिये।

मुमुक्षु :- कुछ लोग कहते हैं कि क्रमबद्धपर्यायके बहाने, जो होना है वही होगा। पुरुषार्थ तो हम बहुत करते हैं, लेकिन नहीं होता है तो क्रमबद्धपर्यायमें नहीं है। होने योग्य नहीं है तो कैसे होगा? उसका क्या किया जाय? उसका समाधान क्या है?

समाधान :- क्रमबद्ध ऐसे क्रमबद्ध नहीं होता है। क्रमबद्ध तो, पुरुषार्थके साथ

क्रमबद्ध होता है। गुरुदेव कहते हैं कि ज्ञायक तरफ दृष्टि करो। ज्ञायकको जिसने समझा, उसने क्रमबद्धको समझा। जो ज्ञायक नहीं समझता है, उसको क्रमबद्ध भी समझमें नहीं आया है। क्रमबद्धके साथ पुरुषार्थका सम्बन्ध है। पुरुषार्थ बिना क्रमबद्ध नहीं है। जिसके लक्ष्यमें पुरुषार्थ नहीं है, उसका क्रमबद्ध यथार्थ नहीं होता। वह तो संसारका क्रमबद्ध है।

जिसे पुरुषार्थकी दृष्टि होती है, उसका क्रमबद्ध मोक्षके तरफ जाता है। पुरुषार्थके साथ क्रमबद्धको सम्बन्ध है। ऐसे काल, स्वभाव आदि, पाँच लब्धियाँ साथमें होती है तब अपना कार्य होता है। क्रमबद्ध अकेला समझने-से नहीं होता, पुरुषार्थ पूर्वक क्रमबद्ध समझना।

मुमुक्षु :- माताजी! जब पर्यायमें अल्पज्ञता है तो सर्वज्ञ स्वभावका विश्वास कैसे आयेगा?

समाधान :- पर्यायमें अल्पज्ञता भले होवे। अपना स्वभाव सर्वज्ञ है। पर्याय अल्पज्ञ होवे तो भी विश्वास हो सकता है। सर्वज्ञकी परिणति प्रगट करनेमें तो देर लगती है। सर्वज्ञकी प्रतीत तो हो सकती है। प्रतीत होनेमें अल्पज्ञ पर्याय उसमें रोकती नहीं है। सर्वज्ञकी प्रतीत तो हो सकती है कि मैं सर्वज्ञ हूँ। ऐसी प्रतीति हो सकती है। मैं ज्ञायक, संपूर्ण ज्ञायक हूँ। मैं सर्वज्ञ शक्ति-से सर्वज्ञ हूँ। प्रगट नहीं हुआ, परन्तु ऐसी प्रतीत हो सकती है।

मुमुक्षु :- स्वानुभूतिके लिये हमको इन्द्रियज्ञान बाधक लगता है। इन्द्रिय ज्ञान .. तो अनुभूति होगी।

समाधान :- अपने करने-से होता है, इन्द्रियका ज्ञान रोकता नहीं है। अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट करनेमें अपनी रुचि बदल देनी। स्वरूप तरफ रुचि करे, उसमें लीनता करे, प्रतीत करे। जिसका स्वभाव मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञानमात्र स्वभाव है उतना मैं हूँ। उसमें विश्वास करके उसमें स्थिर हो जाय, लीनता करे तो अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट होता है। इन्द्रिय ज्ञान उसमें रोकनेवाला नहीं है। भीतरमें-से प्रगट करना अपने हाथकी बात है। कोई इन्द्रियज्ञान उसमें रोकता नहीं है। इन्द्रियज्ञान होवे इसलिये अतीन्द्रिय नहीं होता है, ऐसा नहीं है।

भीतरमें-से प्रगट करना स्वयंसिद्ध अपना स्वभाव है। अपनेआप, अपारिणामिक द्रव्य अपनेआप प्रगट कर सकता है। देव-गुरु-शास्त्र उसका निमित्त होता है। उपादान अपना है। जो जिनेन्द्र देवने बताया, जो गुरुदेवने बताया, जो शास्त्रमें होता है, सब अपने करना पड़ता है। अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट करे, उसमें स्वानुभूति प्रगट करना अपने हाथकी बात है। कोई कर नहीं देता है। उसमें कोई रोकता नहीं है। इन्द्रिय ज्ञान उसमें रुकावट नहीं करता है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव कहते थे कि ज्ञान परको जानता ही नहीं है। तो हम करें क्या?

समाधान :- गुरुदेव ऐसा नहीं कहते थे, परको नहीं जानता है ऐसा नहीं कहते थे। गुरुदेव कहते थे, स्वपरप्रकाशक ज्ञान है। शास्त्रमें ऐसा आता है। स्वपरप्रकाशक ज्ञानका स्वभाव है। पर तरफ तेरी एकत्वबुद्धि है। परमें उपयोग लगता है तो परको मैं जानता हूँ, स्वको भूल गया है। स्वका ज्ञान प्रगट कर। परको तू जानता नहीं है ऐसा नहीं है। स्वपरप्रकाशक ज्ञानका स्वभाव है। जाननेका हटाना नहीं है, अपनी रुचि बदलनी है। उपयोग पलट दे। उपयोग स्व तरफ कर ले। मैं ज्ञायक स्वभाव हूँ। उसमें जो सहज स्वभाव स्वपरप्रकाशक है, केवलज्ञानमें स्वपरप्रकाशक स्वभाव प्रगट होता है।

उपयोग बाहर ज्ञेयमें लग जाता है, ज्ञेय उपयुक्त (होता है), ज्ञेयमें एकमेक हो जाता है। ज्ञेयमें एकमेक नहीं होना। भेदज्ञान करके अपने स्वरूपमें लीन होना। तो अपना स्वपरप्रकाशक ज्ञान प्रगट होता है।

मुमुक्षु :- पूज्य माताजी! आबालगोपाल सभीको भगवान आत्मा जाननेमें आ रहा है। थोड़ा-सा स्पष्टि किजीये।

समाधान :- आबालगोपालको जाननेमें आ रहा है उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि जाननेमें आ रहा है इसलिये उसकी अनुभूति हो रही है, उसकी स्वानुभूति हो रही है (ऐसा नहीं है)। अनुभूति ऐसी हो रही है कि स्वयंसिद्ध आत्मा है। उसका असाधारण ज्ञानस्वभाव है। वह ज्ञानस्वभाव अपने स्वभावरूपसे परिणमता है, विभावरूप नहीं हुआ है। द्रव्यदृष्टि-से स्वभावरूप परिणमता है। आबालगोपाल सब ज्ञानमें जान सकते हैं। उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि उसकी अनुभूति अर्थात् सम्यक्ज्ञान हो गया, ऐसा उसका अर्थ नहीं है।

ज्ञानस्वभाव सबको लक्ष्यमें आ सकता है। असाधारण ज्ञानस्वभाव है। सब जान सकते हैं कि मैं ज्ञानस्वभाव आत्मा हूँ। ये जड़ कुछ जानते नहीं। मैं जाननेवाला हूँ, ऐसी प्रतीत सब आबालगोपाल कर सकते हैं। मैं जाननेवाला हूँ, ये जड़ नहीं जानता है, मैं जाननेवाला हूँ। अपने स्वभावरूप ज्ञानस्वभाव अनादिअनन्त है। वह ज्ञान जड़ नहीं हुआ। वह ज्ञानस्वभाव आबालगोपाल सब जान सकते हैं। ज्ञानकी अनुभूति होती है। यथार्थ स्वभावमें लीन होकर स्वानुभूति हो रही है, ऐसा अर्थ नहीं है। अनुभूति अर्थात् ज्ञान सबको है। ऐसा असाधारण ज्ञानस्वभाव सबको जाननेमें आता है। उसका अर्थ ऐसा है। जड़ नहीं है। ज्ञानस्वभाव सबको अनुभवमें आ रहा है, ऐसा ज्ञानस्वभाव अनुभवमें आ रहा है। सम्यक्रूप-से (आ रहा है), ऐसा नहीं। उसका लक्षण, जो लक्षण है वह आबालगोपाल सब जान सकते हैं। ऐसा उसका ज्ञानस्वभाव है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

गर्भ कल्याणक
ता. २१-१-२०२४

मंगलाचरण

चत्तारि मंगलं, अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलीपण्णत्तो धम्मो मंगलं

चत्तारि लोगुत्तमा, अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा,

केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

चत्तारि शरणं पव्वज्जामि, अरहंते शरणं पव्वज्जामि, सिद्धे शरणं पव्वज्जामि,

साहू शरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं शरणं पव्वज्जामि ।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी ते तरे,

सकल कर्मनो आणे अंत, मोक्ष तणा सुख लहे अनंत,

भाव धरीने जे गुण गाय, ते जीव तरीने मुक्ति जाय,

संसारमांहि शरण चार, अवर शरण न कोई, जे नर-नारी आदरे, तेने अक्षय अविचल पद होय ।

अंगूठे अमृत वसे, लब्धि तणा भंडार, ज्यां गुरु गौतमने समरिये तो सदाय मन वांछित फल दातार।

श्रोता : गुरुदेव तो हर बार सुप्रभात में आत्महितकारी बात लेते थे और अंदर में अनंत आनंद, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्य किस प्रकार प्रकट हो उसका खास रसप्रद कलश लेते थे लेकिन आज आगे का कलश में देखा कि अंदर जिन्हें ज्ञाननय और क्रियानय की परस्पर मैत्री होती है उसे ही ऐसा परिणमन होता है, ऐसी बात ली। तो वह ज्ञाननय और क्रियानय की मैत्री का स्वरूप क्या होगा?

पूज्य बहिनश्री : गुरुदेव का तो प्रभाव कोई अद्भुत था। गुरुदेव तो कोई पृथक ऐसी बात पृथक ज्ञाननय और क्रियानय अर्थात् जो उसकी मैत्री करे कि मैं ज्ञायक हूँ ऐसा अंतर में से जिन्हों ने ग्रहण किया स्वयं का अस्तित्व जिन्हों ने ग्रहण किया कि जो अंदर में स्वयं राग से निवर्ते और स्वयं में लीनता करे कि मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायकरूप परिणमन करे तो वह ज्ञाननय और क्रियानय की मैत्री है। ज्ञायक की ज्ञायकरूप परिणति न करे और मात्र मैं ज्ञायक हूँ सभी उदयाधीन है। सभी विभाव है, ऐसा ही मात्र बोलता रहे और अंतर में यदि भेदज्ञान न हो और ज्ञायक हूँ ज्ञायकरूप परिणति न हो तो वह ज्ञायकरूप परिणति न होकर मात्र वह ज्ञान बोलनेरूप होता है। और क्रिया में शुभ परिणाम करके उसमें संतुष्ट होता

है तो भी वह क्रिया में रुक जाता है। लेकिन स्वयं का अस्तित्व ग्रहण करके मैं ज्ञायक हूँ , यह ज्ञायक हूँ ऐसा जानकर राग से निवर्तन राग से पृथक होकर ज्ञायक में ज्ञायकरूपे परिणमन करे तो वह ज्ञाननय क्रियानय की मैत्री है। तो उसने अनेकांतरूप यथार्थ आत्मा को ग्रहण किया है। मैं चैतन्यद्रव्य अखंड शाश्वत हूँ यह शाश्वत हूँ उसको जैसा ज्ञायक है। उसरूप परिणति करने का उसका पर्याय में भी ऐसा अभ्यास करता है। राग से निवर्तता है। और स्वयं में स्वरूप की परिणति प्रकट करता है। तो वह वास्तविक दोनों का भेदज्ञान वास्तविक ज्ञायक की परिणति प्रकट हुई है।

मात्र अकेला क्रिया में संतोष हो, मात्र बोलने में मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ किया करे यह सभी उदयाधीन है। और अंतर में से राग से निवर्तन करता नहीं है भेदज्ञान की परिणति करता नहीं है तो उसे ज्ञाननय और क्रियानय की मैत्री नहीं है। लेकिन द्रव्यदृष्टि उसे कहते है कि स्वयं चैतन्य का अस्तित्व ग्रहण करके और ज्ञायक की परिणति प्रकट करे तो उसने द्रव्यदृष्टि यथार्थ प्रकट की है। ऐसी ज्ञायक की परिणति अंतर में से प्रकट करे तो उसे ज्ञाननय की क्रियानय की मैत्री है। तो उसे प्रकट है। तो उसमें से उसे आत्मा का स्वरूप जो आनंद स्वरूप है। आनंद जिनका रूप है। ऐसा जो चैतन्य जो अनंतज्ञान, अनंतदर्शन स्वरूप है। ऐसा जो आत्मा उसमें उसे यह प्रकट होता है। ऐसी भेदज्ञान की धारा जिन्हें प्रकट होती है, बारम्बार मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसा अभ्यास अंतर से परिणति प्रकट करके विकल्प तूटकर अंतर में लीनता करे, ज्ञायक हूँ उस रूप तो अभी आनंद जिनका रूप है। आनंद स्वरूप जिसका वास्तविक एक रूप है। ऐसा ज्ञानस्वभाव से जो खील (निखर) उठता है। वे स्वयं निर्विकल्प स्वरूप में लीन होता है तो उसमें से वह खील (निखर) उठता है। और गुरुदेव यह ही कहते थे।

गुरुदेव तो कोई अपूर्व, उनकी कोई अपूर्व वाणी और उनका श्रुतज्ञान कोई अपूर्व कहता था, गुरुदेव का तो परम उपकार है। ऐसा आत्मा जो ज्ञानयन और क्रियानय की मैत्री करे उसे प्रकट होता है। मात्र अकेला बोला करे उसमें नहीं प्रकट होता और शुभभाव में संतुष्ट हुआ करे तो भी नहीं होता, लेकिन मैं चैतन्य पृथक हूँ, ऐसा स्वयं का अस्तित्व ग्रहण करके भेदज्ञान का अभ्यास करे बारम्बार... यह आता है – और ज्ञानरूपी करवत से उसका भेदज्ञान करे, तो भेदज्ञान करे तो वह अंदर से ज्ञाताद्रव्य जगमगा उठता है। लेकिन इसी प्रकार कि उसमें ज्ञायक जगमगा उठता है। इस प्रकार उसे ज्ञाननय निकलता है इस प्रकार उसकी ज्ञाननय और क्रियानय की मैत्री से चैतन्य को इस प्रकार ग्रहण करता है। और इसी प्रकार अभ्यास करता है तो वह प्रकट होता है।

ऐसा अनंत ज्ञान जिनका स्वरूप है। अचल जिनकी ज्योत है। वह जिसकी ज्योत, जो उसका वीर्य अनंत है, जो अंदर में सुस्थितरूप जो संयमरूप वर्तता है ऐसा जो आत्मा वर्तन है। प्रथम अंश प्रकट होता है, स्वानुभूति होती है, उसका प्रभात होता है और यह बादमें स्वयं अखंड स्वयं अनंत शक्तिओं से परिपूर्ण स्वरूप है। लेकिन उसका प्रभात होने पर पूर्ण जो प्रभात होता है तो अवश्य केवलज्ञान प्रकट होता ही है। अर्थात् पूर्ण केवलज्ञान उसमें से प्रकट होता है। अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतबल और आनंद में जिनका रूप अनंतरूप जिनका आनंदरूप है। ऐसा आत्मा प्रकट होता है। यह स्वानुभूति में लेकिन जिनका आनंदरूप है। ऐसा आत्मा प्रकट होता है। और पूर्ण दशा में जिनका आनंदरूप है। ऐसा आत्मा प्रकट होता है। अनंत ज्ञान से परिपूर्ण आत्मा कि जिसमें कोई उसका पार नहीं ऐसा अनंत ज्ञान है। ऐसा अनंत दर्शन है। ऐसा अनंत बल है, ऐसा अनंत वीर्य, ऐसा अनंत अनंत प्रकट होता है।

शेष जो प्रकट नहीं होता उसमें वह ठहर गया है। बाहर में वह ज्ञाता की ज्ञेय की एकता बुद्धि कि जो ज्ञेय जानने में मैं उसे पृथक करना पडता नहीं है। उसमें वह एकता में रुक गया है। बाह्य में कर्ताबुद्धि में बाहर की क्रियाओं में मानों मैं मैंने सब कुछ बहुत किया उसमें रुक गया है। ऐसा बाहर का ऐसा सभी में रुक गया। राग की क्रियाओं में – राग और मैं दोनों एक है। इस प्रकार रुक गया है। उससे पृथक पड़े कि मैं ज्ञायक हूँ जो ज्ञेय जानने में आता है उससे मैं पृथक हूँ, ज्ञायक हूँ और जो राग होता है उससे स्वयं भेदज्ञान करता है। मैं परपदार्थ का कुछ भी कर सकता नहीं लेकिन मैं तो ज्ञायक हूँ। स्वयं ज्ञायक में मेरी परिणति हो ज्ञायकरूप में मैं परिणति करूँ यह ही मेरी क्रिया। यह बाह्य का जो करना वह मेरी क्रिया नहीं वह तो परद्रव्य की है। उससे पृथक पड़ता है। तो उसमें से उसे अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन आनंदरूप जो यह प्रकट होता है। यह मार्ग गुरुदेव ने बतलाया है। वह भेदज्ञान का मार्ग जो यह आनंदरूप जो चैतन्य स्वरूप अपूर्व जो जिसके साथ किसी का मेल नहीं ऐसा अपूर्व आत्मज्ञान प्रकट होता है।

श्रोता : और ज्ञायक की परिणति प्रकट करे उसे ज्ञाननय और क्रियानय की मैत्री होती है।

पूज्य बहिनश्री : ज्ञायक की परिणति प्रकट करे तो ज्ञाननय और क्रियानय की मैत्री है। ज्ञायक की परिणति नहीं प्रकट हुई तो वह मैत्री नहीं है। तो विकल्प से निश्चित करे कि यह ज्ञान यह क्रिया ऐसी। शेष भीतर परिणति नहीं तो ज्ञाननय और क्रियानय की मैत्री नहीं है। कोई क्रिया में रुक जाता है। कोई ज्ञान में रुक जाते है। और कोई मुमुक्षु आत्मार्थी हो तो ऐसा माने कि मेरे से होता नहीं लेकिन यह ज्ञायक की परिणति ही प्रकट करने योग्य है। वस्तु स्वरूप ऐसा है कि द्रव्य वस्तु स्वभाव से पृथक उसे पृथक करने से शुद्ध पर्याय प्रकट होती है। ऐसा विकल्प से ज्ञान करे ऐसा आत्मार्थीओं इस प्रकार ज्ञान करे लेकिन ज्ञानक्रिया की मैत्री तो अंदर ज्ञायकदशा प्रकट हो तभी ज्ञाननय और क्रियानय की मैत्री होती है। प्रथम यह समझे भावना में ऐसा यह करने का यह है। शेष जो नहीं समझता है वह एकांत में बह जाता है, मात्र बोला करे कि आत्मा ज्ञायक है। और कोई अल्प कार्य शुभभाव करे तो मैं अधिक करता हूँ ऐसा माने वह नहीं लेकिन जब यथार्थ आत्मार्थीओं कि जिन्हें आत्मा का प्रयोजन है। यह यथार्थ समझता है कि यह वस्तु द्रव्य वस्तु स्वभाव से पृथक है लेकिन उसमें यह राग उसका स्वभाव नहीं है। लेकिन यह ज्ञायकरूप मैं किस प्रकार परिणमित होऊँ इस प्रकार की उसकी भावना रहती है। और ऐसा वह निर्णय करता है कि करने का तो यह ही है इसप्रकार।

श्रोता : 'कोई क्रिया थई रह्या शुष्कज्ञानमां कोई,...' वह तो छोड देने का। लेकिन ज्ञान और वैराग्य की मैत्री जो ज्ञान और वैराग्य साधकदशा में साथ में होती है।तो वैराग्य में और इस क्रियानय में एक ही समान भाव है कि कुछ अल्प सूक्ष्म अंतर होगा ?

पूज्य बहिनश्री : ज्ञान और वैराग्य और क्रिया को क्रिया में मात्र यह क्रिया में रुकता है और वह वैराग्य है, वह वैरागी है। अकेला वैराग्य में रुकता है। क्रिया और वैराग्य लगभग मात्र – बाह्य क्रिया में रुक जाता है। वह उसे वैराग्य वैराग्य किया करता है, उसमें इतना अंतर है।

श्रोता : ज्ञान और क्रियानय की मैत्री जो यह है। साधक की भूमिका में यह क्रियानय जो है और वैराग्य की बात यह दोनों एक समान बात है कि दोनों के बीच में कोई अल्प अंतर होगा।

पूज्य बहिनश्री : ज्ञाननय और क्रियानय की मैत्री में यह क्रियानय में वैराग्य साथ में आ जाता है। इसमें साथ में वैराग्य उसमें वैराग्य साथ में हो तभी उसकी क्रिया की परिणति होती है कि मैं ज्ञायक हूँ और उसमें से निवर्तने की जो क्रिया होती है, स्वरूप की लीनता की क्रिया जो होती है, वह वैराग्य बिना होती नहीं है। इसलिये उसमें क्रियानय में साथ में वैराग्य समाहित हो जाते है। इसमें विरक्ति समाहित हो जाती है।

श्रोता : सम्यक् निर्णय जैसा है ? क्रियानय में अस्तिभाव से वीतरागता प्रकट करना और वैराग्य में राग से वापिस मुड़ना ऐसा भाव होगा?

पूज्य बहिनश्री : हाँ वह वैराग्य अर्थात् विरक्ति नास्ति करके उस स्वरूप में परिणति की अस्ति करता है। अस्ति-नास्ति। लेकिन वास्तविक अस्ति तो चैतन्य को ग्रहण किया वह अस्तित्व है। उस द्रव्य को ग्रहण करना। लेकिन यह परिणति प्रकट की परिणति की अपेक्षा से यह अस्ति है। और विरक्ति हुई नास्ति है। यह क्रियावाला जो बाह्य क्रिया में है। वह वैराग्य की क्रिया में इस प्रकार ठहरता है। उसमें गर्भित वैराग्यरूप से वैराग्य समझे बिना का है। आत्मा को समझता नहीं है। अस्तित्व ग्रहण किया नहीं है।

श्रोता : रुंधायेलो कषाय...

पूज्य बहिनश्री : हाँ यह होता है।

श्रोता : साधक को दोनों साथ में होता है लेकिन मुख्य-गौण कुछ रहता होगा प्रारम्भ में अल्प-अधिक ?

पूज्य बहिनश्री : जो साधक की परिणति है। प्रारम्भ में रहता है ऐसा नहीं है। उसका मार्ग ही यह है। द्रव्यदृष्टि द्रव्य पर, द्रव्य की दृष्टि मुख्य रहती है। उसमें जो पुरुषार्थ होता है यह पर्याय में मेरा यह विभाव है। उस से पृथक होकर और स्वरूप की परिणति प्रकट करते है। यह गौण द्रव्यदृष्टि अपेक्षा से उसे गौण रहती है। और परिणति अपेक्षा से उसे मुख्य कहा जाता है। कोईवार मुख्य-गौण ऐसा कहा जाता। लेकिन द्रव्यदृष्टि तो उसे सदा के लिए मुख्य होती है। उसकी लीनता की भावना करे। मुझे लीन होना है। ऐसी भावना आती है, चारित्र की भावना आती है। ऐसी सभी पर्याय अपेक्षा से मुख्य ऐसा करे लेकिन उसकी अंदर जो दृष्टि है, दृष्टि अपेक्षा से कोई मुख्य होता नहीं है।

श्रोता : शुक्लध्यान से लेकर केवलज्ञान तक की सभी बात में स्वयं ऐसी स्थापना कर जिसने स्वयंभूरूप लिया उसमें प्रथम कोई असुविधा में अल्प-अधिक होगा ?

पूज्य बहिनश्री : नहि! अन्य किसी को नहीं, एक स्वयंभू आत्मा का ही अवलंबन। द्रव्यदृष्टि का स्वयंभू आत्मा ... आत्मा स्वयं खुद स्वयं से है। स्वतःसिद्ध उसका ही आलंबन अन्य किसी का आलंबन नहीं है।

श्रोता : देव-शास्त्र-गुरु की अल्प आवश्यकता में आधार में...

पूज्य बहिनश्री : स्वयं के चैतन्यद्रव्य का ही आलंबन, अन्य किसी का नहीं, शुभभाव में उसका आलंबन होता है, देव-गुरु-शास्त्र में यह शुभभाव में आलंबन मेरे साथ में रहना, मैं अपने आत्मा में जाता हूँ। क्योंकि मेरी अपूर्णता है। अर्थात् शुभभाव मुझे आते है तो तो आप मेरे साथ में रहना। मुझे आपका आदर है। मेरे स्वभाव का जो आदर ऐसा आप का

मुझे आदर है। इसलिये मेरे साथ में रहना। मैं आपका आदर करूँ, मुझे मैं जहाँ आगे बढ़ूँ, मुझे साथीदार के रूप में मुझे सहाय में देव-गुरु-शास्त्र रहना ऐसी भावना करे। शेष आलंबन द्रव्य का है।

श्रोता : काम स्वयं अंदर में करने का है।

पूज्य बहिनश्री : काम स्वयं को यह करने का है। देव-गुरु-शास्त्र प्रति शुभभावना में उसे पूर्ण भक्ति आती है कि मेरे साथ में रहना, उसे ऐसा नहीं होता है कि यह सभी बाहर का है, करने का अंदर में है ने ! इस प्रकार के भाव आते नहीं है। उसके भाव ऐसे होते है कि मैं अंदर में जाऊँ और शुभभाव उपस्थित है, अभी कोई वीतराग नहीं है। शुभभावना में आप साथ रहे, ऐसा भक्तिभाव आता है। गुरुदेव मुझे सहायरूप हो, गुरुदेव मुझे उपदेश दो, ऐसी सभी भावनाएँ होती है। भावना ऐसी होती है। गुरु के प्रताप से मैं आगे बढ़ा गुरुदेव ने सब कुछ दिया है। ऐसा देव-गुरु-शास्त्र परिणमन क्रियावाला सभी इकट्ठा ही हूँ। पुरुषार्थ स्वयं करे लेकिन उपकार गुरु का, देव, गुरु, शास्त्र का उपकार उसे आये बिना रहता नहीं है।

अनादिकाल से नहीं पहिचाना वह मार्ग गुरुदेव ने बतलाया है। और जो पर्याय में द्रव्य अनादि अनंत शुद्ध होने पर भी पर्याय में जो परिणति पलटने में जो उसे पुरुषार्थ होता उसमें देव-गुरु-शास्त्र का निमित्त हुआ है। और अनादि का निमित्त–नैमित्तिक संबंध लेकिन ऐसा है। कि अनादि स्वयं समझा नहीं उसको प्रथम समझे तब देशनालब्धि होती है। उसमें देव या गुरु का निमित्त प्रत्यक्ष निमित्त होता है। ऐसा निमित्त-उपादान का सम्बन्ध है। जो अकेला स्वयं से वह स्वयं से ही होता है। लेकिन निमित्त-नैमित्तिक संबंध न हो तो ऐसा यह सम्बन्ध है कि देशनालब्धि अनादि में प्रथम देशनालब्धि होती है और प्रत्यक्ष देव-गुरु हो इस प्रकार देशनालब्धि आती है। इसलिये प्रत्यक्ष का उपकार कहने में आता है।

वह प्रत्यक्ष सदगुरु सम नहीं यह आता है, प्रत्यक्ष का उपकार है। क्योंकि अनादि से स्वयं चैतन्यद्रव्य शुद्ध होने पर भी जब उसकी पर्याय पलटने का पुरुषार्थ होता है तभी देव और गुरु का निमित्त होता है। ऐसा निमित्त-उपादान का सम्बन्ध है। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र होने पर भी ऐसा निमित्त-उपादान का संबंध होता है। अर्थात् पर्याय का निमित्त-नैमित्तिक का कैसा सम्बन्ध है। यह ज्ञान में रखकर उसे प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। इस प्रकार की उसकी द्रव्य पर दृष्टि और इस प्रकार का वह प्रत्यक्ष सदगुरु सम नहीं यह आता है, प्रत्यक्ष का उपकार है। क्योंकि अनादि से स्वयं चैतन्यद्रव्य शुद्ध होने पर भी जब उसकी पर्याय पलटने का पुरुषार्थ होता है तभी देव और गुरु का निमित्त होता है। ऐसा निमित्त-उपादान का सम्बन्ध है। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र होने पर भी ऐसा निमित्त-उपादान का संबंध होता है। अर्थात् पर्याय का निमित्त-नैमित्तिक का कैसा सम्बन्ध है। यह ज्ञान में रखकर उसे प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। इस प्रकार की उसकी द्रव्य पर दृष्टि और इस प्रकार का ज्ञान इस प्रकार काम करता है। दृष्टि और ज्ञान यह दोनों मैत्री के रूप में कार्य करते है। जैसे ज्ञान और क्रियानय की मैत्री, ऐसे दृष्टि और ज्ञान मैत्री से कार्य करते है।

श्रोता : जैनदर्शन की ऐसी अटपटी बात अन्य के आगे समझ में आती नहीं है, कभी ऐसा कहो और कभी ऐसे कहो।

पूज्य बहिनश्री : यह दोनों को सम्बन्ध है। दृष्टि और ज्ञान की मैत्री है। द्रव्यदृष्टि अखंड ग्रहण करे तो ज्ञान में दोनों रूप आते हैं। जो मैत्री है वस्तु का स्वरूप द्रव्य-गुण-पर्याय है। इसलिये सभी में दो-दो आते हैं। वस्तु का स्वभाव अभेद और

उसमें गुण के भेद पर्यायभेद, भेद-अभेद दोनों अपेक्षा एक द्रव्य में होती है। इसलिये प्रत्येक जगह दोनों की मैत्री होती ही है।

श्रोता : दृष्टि और ज्ञान दोनों साथ में ही होता है।

पूज्य बहिनश्री : दृष्टि और ज्ञान साथ में ही होता है। ज्ञान और क्रियानय जैसे साथ में होता है ऐसी दृष्टि और ज्ञान साथ में होती है। वस्तु अनादि अनंत है। तो वह उसमें कोई अनंता गुण नहीं ऐसा नहीं है। कि उसे अभेद कहा जाता है वस्तु स्वभाव से कोई लक्षण भेदे उसमें कोई भेद नहीं उसमें पर्यायें नहीं यह सभी अपेक्षा से यह कूटस्थ है ऐसा नहीं है कि उसमें कोई गुण नहीं एक अखंड परिपूर्ण है। लेकिन उसमें गुण नहीं ऐसा नहीं है। एक वस्तु की अंदर एक अभेद में और अनेकांतमय मूर्ति है। अर्थात् उसमें दो अपेक्षायें एक द्रव्य में ही होती है। तो उसकी साधना में भी सभी की दो-दो अपेक्षाएँ होती है। वस्तु स्वरूप ही अनेकांत का प्रधान है।

श्रोता : ज्ञाननय में लिया है कि स्याद्वाद की प्रवीणता से प्रथम बात वहाँ ली।

पूज्य बहिनश्री : वहाँ पर स्याद्वाद की प्रवीणता से प्रथम ही लिया है।

बोलीये अनुभवऋद्धिधारक भगवती मात की जय हो,

स्वानुभूतिऋद्धि मार्ग प्रकाशक कृपालु कहानगुरुदेव की जय हो.....

ट्रेक-२४२

समाधान :- ... आत्मा भिन्न है और शरीर भिन्न है। विभावस्वभाव अपना नहीं है। उनसे भिन्न आत्मा है। उससे भेदज्ञान करना और आत्माको ग्रहण करना। ... आत्माका लक्षण पीछानकर उसकी श्रद्धा-प्रतीत और उसमें लीनता करना वही मुक्तिका मार्ग है। बाहरमें क्रिया और शुभभाव तो पुण्यबन्धका कारण है। बीचमें आता है तो पुण्यबन्ध होता है, भवका अभाव नहीं होता। देवलोक होता है। भवका अभाव तो शुद्धात्माको पीछानने-से होता है। शुद्धात्माकी श्रद्धा, उसका ज्ञान, उसमें लीनता और स्वानुभूति करने-से मुक्तिका मार्ग प्रगट होता है। जन्म-मरण टालनेका वही उपाय है।

जन्म-मरण करते-करते अनेक दुःख संसारमें (भोगे)। भीतरमें आत्माका स्वभाव ग्रहण करना चाहिये। वह करने लायक है। और सब तो तुच्छ है। सर्वस्व साररूप तो आत्मा ही है। वही कल्याणस्वरूप है, वही मंगलस्वरूप है। और जीवनमें सर्वस्व साररूप आत्म पदार्थ है। उसके लिये वांचन, विचार सब आत्माको पीछाननेके लिये करना चाहिये।

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन कैसे करना?

समाधान :- वह भी भेदज्ञान करने-से होता है। जो देव-गुरु-शास्त्रने जो मार्ग बताया है, वह मार्ग ग्रहण करके आत्माको पीछानना। जैसा भगवानका स्वरूप है, वैसा अपना स्वरूप है। भगवानके द्रव्य-गुण-पर्यायको पीछानता है, वह अपनेको पीछानता है। अपनेको पीछानता है, वह भगवानको पीछानता है। अपने द्रव्य-गुण-पर्यायको पीछानना। मैं द्रव्य अनादिअनन्त शाश्वत हूँ। उसमें शुद्धता भरी है। अनन्त काल गया तो भी उसमें-मूल पदार्थमें अशुद्धता हुयी नहीं, पर्यायमें अशुद्धता है। इसलिये मेरा आत्मस्वभाव अनादिअनन्त शुद्ध है। इसमें अनन्त गुण हैं। उसकी पर्यायमें अशुद्धता है तो उसका भेदज्ञान करके और मैं शुद्धात्मा हूँ, उसकी दृष्टि-प्रतीत करके विभाव-से अलग होना। उसका भेदज्ञान करके शुद्धात्माकी पर्याय प्रगट करना। बारंबार उसकी लगन, महिमा लगाना। वही जीवनका कर्तव्य है।

आत्मा अनादिअनन्त शुद्ध है। उसमें कोई अशुद्धता भीतरमें नहीं आयी। पर्यायमें अशुद्धता हुयी है। जैसे पानी स्वभाव-से शीतल है। अग्निके निमित्त-से उसकी उष्णता

पर्याय होती है। ऐसे आत्मा स्वभाव-से शीतल ही है। उसका ज्ञान करना, वही स्वानुभूतिका उपाय है। उसकी प्रतीत करना, ज्ञान करना, लीनता करना वही स्वानुभूति करनेका उपाय एक ही है।

स्वभावमें-से स्वभाव आता है, विभावमें-से स्वभाव नहीं आता है। सोनेमें-से सोनेके गहने बनते हैं और लोहेमें-से लोहोके गहने बनते हैं। ऐसे स्वभावमें-से स्वभावकी पर्याय होती है, विभावमें-से विभाव होता है। शुभभाव करे तो भी पुण्यबन्ध होता है, स्वभाव नहीं प्रगट होता। पुण्य तो बीचमें आता है। और स्वभावको ग्रहण करने-से स्वभावकी पर्याय (प्रगट होती है), शुद्धात्माको ग्रहण करने-से शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। वह ग्रहण करने योग्य है।

पहले नक्की करना कि अनादि काल-से अगृहित भी एकत्वबुद्धि है। गृहीत तो छोड़ना। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र कैसे होनो चाहिये, यह नक्की करना चाहिये। जिनेन्द्र देव और गुरु जो यथार्थ आत्माकी साधना करते हैं और शास्त्रमें जो मार्ग बताया है, ऐसे देव-गुरु-शास्त्र यथार्थ है, उसको ग्रहण करना चाहिये। उसका स्वरूप समझना। और उसमें जो विपरीत मान्यता है वह छोड़ देना। यह गृहीत मिथ्यात्व छूटनेका उपाय है।

ऐसा नक्की करना चाहिये कि सच्चे वीतरागी देव ही देव है। सच्चे आत्माकी साधना मुनिराज करते हैं वे गुरु हैं, शास्त्रमें जो स्वानुभूतिका मार्ग बताया वही शास्त्र यथार्थ है। उसको बराबर नक्की करना चाहिये। जिसको आत्माकी लगी, आत्माका कल्याण करना है, उसको गृहीत मिथ्यात्व छूट जाता है। आत्माका कल्याण करना है, भवभ्रमण-से छूटना है तो उसको गृहीत मिथ्यात्व छूट जाता है। भीतरमें जिसको अगृहीत भी छोड़ना है तो गृहीत तो छूट ही जाता है। अगृहीत अनादिका है वह छोड़ने लायक है। वह छूटे तब स्वानुभूति होती है।

सच्चे देव-गुरु-शास्त्रको ग्रहण करके उसका यथार्थ व्यवहार करना, वह तो स्थूल है। वह तो-गृहीत मिथ्यात्व तो-आसानी-से छूट जाता है। अगृहीत छूटना मुश्किल है। बाहर-से सच्चे देव-गुरु-शास्त्रको ग्रहण करना चाहिये। वह तो स्थूल है, वह छूटना तो (आसान है)। अनन्त कालमें जीवने वह भी छोड़ा है। अगृहीत नहीं छूटा है।

समाधान :- .. ग्रहण करनेकी रुचि लगे। उसकी लगन, उसकी महिमा, वस्तुका विचार होना चाहिये। मैं चैतन्यद्रव्य अनादिअनन्त हूँ। .. द्रव्य है, उसके गुण कैसे हैं, उसकी पर्याय कैसी है? ऐसा विचार, मंथन भीतरमें होना चाहिये। दिन और रात उसकी लगन लगनी चाहिये। बारंबार-बारंबार मैं चैतन्य ज्ञायक हूँ, ये सब मेरा स्वरूप नहीं है, मैं उससे भिन्न हूँ। ऐसा अभ्यास होना चाहिये। बारंबार क्षण-क्षणमें, क्षण-क्षणमें, क्षण-क्षणमें चैतन्यका अभ्यास होना चाहिये। सच्चा भेदज्ञान तो परिणतिरूप तो बादमें

होता है, पहले उसका अभ्यास होता है। इसलिये इसका अभ्यास होना चाहिये।

मैं चैतन्य हूँ, ज्ञायक हूँ। ये सब विभाव है। मैं उसका कर्ता नहीं हूँ। परिणति, अपनी विभाव परिणति चैतन्यकी पुरुषार्थकी कमज़ोरी-से होती है। लेकिन वह मेरा स्वरूप नहीं है। मैं चैतन्य अनादिअनन्त शुद्धात्मा हूँ। शुद्ध स्वरूपमें दृष्टि करने-से ज्ञान, उसकी लीनता करने-से शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। इसके लिये बारंबार उसका अभ्यास करना चाहिये। बारंबार-बारंबार।

मुमुक्षु :- ... विचार या भावना.. ये कैसा पता लगे कि ... या मन्द रागका स्वरूप है? ये पता कैसे लगेगा?

समाधान :- मन्द राग, विकल्प मन्द होवे तो भी शुभभाव आकुलतारूप है। विशेष सूक्ष्म दृष्टि-से देखना चाहिये, उसका लक्षण पीछानना चाहिये कि ये विकल्पका लक्षण है, ज्ञानका लक्षण नहीं है। शुभभाव होवे तो भी आकुलतारूप है।

मुमुक्षु :- मैं तो.. विकल्प पकड़में नहीं आता है तो निर्विकल्प या ... ऐसा कुछ है? कैसे पता लगे? समझमें नहीं आता है कि विकल्प है या कोई राग है, ऐसा पकड़में नहीं आता। तब ... आनन्द या शान्तिका वेदन जो होता है, वह आत्मिक है या रागका है, ...

समाधान :- जिसको सच्चा निर्विकल्प होता है, वह ग्रहण कर लेता है कि यह निर्विकल्प है। उसको विकल्प टूट जाता है। विकल्प, शुभभाव भी टूटकर निर्विकल्प स्वभावमें लीन हो जाता है। उसके आत्माका भेदज्ञान हो जाता है। उग्रपने पुरुषार्थ करके वह स्वरूपमें ऐसा लीन हो जाता है कि उसे बाहर विकल्पका ख्याल भी नहीं रहता। उपयोग बाहर-से हट जाता है और स्वरूपमें ऐसा लीन हो जाता है कि अपने स्वरूपमें अनन्त ज्ञान और आनन्दादि अनन्त गुणोंका वेदन स्वानुभूति हो जाती है, अपने आप उसे ख्यालमें आ जाता है। जैसा सिद्ध भगवानका स्वरूप है, ऐसा आंशिक रूपसे उसको वेदनमें आता है। उसका उग्रपने ज्ञान करने-से, उग्रपने निर्विकल्प स्वानुभूति हो जाती है। उसका आत्मा उसको जवाब दे देता है कि यह स्वानुभूति ही है, यह विकल्प नहीं है। उसको शंका भी नहीं रहती है। उसको भेद पड़ जाता है और स्वरूपमें लीन हो जाता है। बाहर उपयोग रहता ही नहीं।

कोई अपूर्व दुनियामें चला जाता है, चैतन्यकी दुनियामें चला जाता है, उसको ख्याल... उसका आत्मा नक्की कर देता है कि यह स्वानुभूति है और यही मोक्षका पंथ है। भीतरमें-से ऐसा निश्चय और वेदन हो जाता है। यह स्वानुभूति है, यथार्थ है। यह स्वानुभूति और भगवान कहते हैं, एक ही स्वरूप है, दूसरा नहीं है। ऐसा आत्मामें-से ऐसा ज़ोर और ऐसी प्रतीति उसको आ जाती है।

मुमुक्षु :- अनुभूति पूर्व उमंग, उल्लास, रोमांचित होना यह घटता है? या नहीं घटता है?

समाधान :- वह तो शुभभावका रोमांच आता है। पूर्वभूमिकामें गुणका भेद, मैं ज्ञान हूँ, दर्शन हूँ, चारित्र हूँ ऐसे भेद पर उसका लक्ष्य नहीं है। दृष्टि तो शाश्वत चैतन्य पर है। परन्तु भीतरमें जो रोमांच होता है, वह शुद्धात्माका रोमांच नहीं है। वह तो शुभभावका है। शुद्धात्माका रोमांच नहीं आता, वह तो अपने स्वरूपमें लीन हो जाता है। स्वानुभूतिमें तो भीतरमें-से अपूर्व आनन्द होता है। पहले-से धीरे-धीरे आनन्द आता जाय, बादमें विशेष आनन्द आवे, ऐसा नहीं है।

जिस क्षण वह स्वरूपमें लीन होता है, जिस क्षण विकल्प टूटता है, उसी क्षण आनन्द आता है। पहले रोमांच होता है वह रोमांच आत्माका नहीं है। वह रोमांच तो शुभभावका है। वह रोमांच आत्मा तरफका नहीं है। उल्लास आता है कि मैं भीतरमें जाता हूँ, वह शुभभावका है।

पहले आनन्दकी शुरूआत हो जाती है वह भीतरका नहीं है। जब विकल्प टूटता है, उसी क्षण आनन्द आता है। जिस क्षण विकल्प टूट गया और स्वरूपमें लीन हुआ, उपयोग स्वरूपमें जम गया तो उसी क्षण आनन्द आता है। पहले-से आनन्द शुरू हो जाता है, ऐसा नहीं होता। वह तो शुभभावका आनन्द है। और उल्लास आता है वह शुभभावका है, वह शुद्धात्माका नहीं है। उसी क्षण आनन्द आता है।

मुमुक्षु :- शान्ति और आनन्द... शीतलता और शान्तिका वेदन कुछ प्रदेशोंमें ...

समाधान :- नहीं, ऐसा नहीं। सर्वगुणांश सो सम्यग्दर्शन। ऐसा होता है तो मनके द्वारा कहनेमें आता है। क्योंकि मनका निमित्त वहाँ होता है। परन्तु उसको आनन्द तो असंख्य प्रदेशमें खण्ड नहीं पड़ता। पूरे चैतन्यमें आनन्द होता है। उसको ऐसा ख्याल नहीं रहता कि इधर-से आनन्द आया, इधरस-से (आया)। वह तो अपने स्वरूपमें लीन हो जाता है। अखण्ड प्रदेशमें उसको आनन्द होता है। मनका निमित्त तो जो विकल्प टूटता है, मन इधर है इसलिये उसको ऐसा लगता है कि इधरसे आया या शुरूआत इधर-से हुयी। परन्तु अखण्ड आत्मामें आनन्द (आता) है।

द्रव्यमन है न, वह ऐसा निमित्त बनता है। विकल्प इधर-से उठता है तो विकल्प भी टूटता है, इसलिये उसको ऐसा लगता है कि इधर-से आया। उसका निमित्त है। बाकी असंख्य प्रदेशमें आनन्द आता है। जब अन्धकार होता है उसमें प्रकाश होता है तो यह अन्धकार जब टूटा तो उसी क्षण प्रकाश हुआ। जब प्रकाश हुआ, विकल्प टूटा उसी क्षण आनन्द आता है।

जबतक शुभभावना है, विकल्प मन्द है तबतक तो वह अन्धकार ही है। जब

स्वरूपमें गया तो प्रकाश (हुआ)। प्रकाशका तो दृष्टान्त है, परन्तु वह प्रकाश कोई बाहरका प्रकाश नहीं है। वह तो चैतन्यस्वरूप है। काली जिरी होती है वह कड़ुवी-कड़ुवी होती है। शुभभावना आकुलता.. आकुलता.. आकुलता उसका भाव है। काली जिरी ऐसी होती है। जो शक्करका स्वभाव है वह पूरा मीठा है। विकल्प टूटता है उसी क्षण आनन्द आता है।

समाधान :- ... सर्वांग आनन्द। चैतन्य स्वरूपमें चैतन्यघनमें चला गया। चैतन्य स्वरूपमें चला गया। बाहर दृष्टि, बाह्य उपयोग छूट गया, अंतरमें उपयोग चला गया। अंतरमें स्वानुभूति असंख्य प्रदेशमें होती है। मनका द्वार कहनेमें आता है, परन्तु मन निमित्त है। बाकी पूरे प्रदेशमें (आनन्द आता है)।

मुमुक्षु :- ...

समाधान :- पहले नक्की करे। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान द्वारा नक्की करता है कि मैं यह आत्मा ही हूँ। ये विभाव है वह मैं नहीं हूँ। मैं आत्मा ही हूँ, ऐसा नक्की करता है। मैं आत्मा ही हूँ, ये सब मुझ-से भिन्न है। ऐसा निर्णय करके अंतरमें स्थिर होता है। जिस क्षण विकल्प टूटे, उसी क्षण स्वानुभूति होती है। दोनों एक ही क्षणमें हैं। पहले विकल्प टूटता-टूटता जाता है, बादमें स्वानुभूति होती है, ऐसा नहीं होत। सूक्ष्ममें सूक्ष्म विकल्प और ऊच्च-से उच्च विकल्प, वह विकल्प ही है। मन्द या तीव्र, वह सब विकल्प है। जिस क्षण वह टूटता है, उसी क्षण निर्विकल्प (होता है)। यहाँ निर्विकल्प होता है, उसी क्षण टूटता है। उसी क्षण आनन्द और उसी क्षण स्वानुभूति। सब साथमें ही है।

मुमुक्षु :- विकल्प टूटे तब एकका ध्यान रहता होगा न?

समाधान :- अकेला चैतन्य, अनन्त गुणसे भरा अकेला चैतन्य। ज्ञान अर्थात् अकेला गुण नहीं, पूरा ज्ञायक।

मुमुक्षु :- उपयोग अंतरमें रखा तो एकका ही ध्यान रह जाता है न? राग छूट जाय तो।

समाधान :- राग छूट जाये तो अकेला ज्ञायक रहता है। ज्ञानस्वरूप आत्मा।

समाधान :- ... दृष्टि पर तरफ है इसलिये विभाव दिखनेमें आता है। दृष्टि और उपयोग दोनों पर तरफ है, इसलिये विभाव दिखनेमें आता है। अनादि ऐसी विभावकी परिणति हो रही है। आत्मा तरफ दृष्टि नहीं है। अनादि काल-से दृष्टि हुयी नहीं। विभाव.. विभाव, विभावमें एकत्वबुद्धि (हो रही है)। विभाव मेरा और विभाव मैं हूँ, ऐसी एकत्वबुद्धि मिथ्या भ्रम हो रहा है। निर्मल है, निर्मल है तो भी देखनेमें नहीं आता। उसका स्वानुभव नहीं है। देखनेमें भी नहीं आता, प्रतीत भी नहीं है। कुछ नहीं है,

इसलिये परपदार्थ तरफ दृष्टि, पर मैं, पर मेरा, ऐसी प्रतीत, ऐसा ज्ञान और ऐसा आचरण सब ऐसा हो रहा है। दृष्टि, ज्ञान और सब (विपरीत है)। दृष्टि विपरीत है इसलिये ज्ञान भी ऐसा हो गया और आचरण भी ऐसा हो गया। सब ऐसा अनादि काल-से विभाव हो रहा है। स्वभाव तरफ दृष्टि करे तो निर्मलता ही भरी है। निर्मलता तरफ दृष्टि नहीं देता।

जैसे स्फटिकके भीतरमें देखो तो निर्मल ही है। ऊपर-ऊपर सब लाल, काला दिखनेमें आता है। तो सब ऐसा देखनेमें आता है। भीतरमें निर्मलता भरी है। भीतरमें दृष्टि दे, मैं निर्मल स्वभावी अनादिअनन्त शाश्वत चैतन्य हूँ, द्रव्य शाश्वत है, उसमें कोई बिगाड़ नहीं होता है। विभाव परिणतिमें सब होता है, पर्यायमें होता है, द्रव्यमें तो होता ही नहीं है। ऐसी दृष्टि करे, उसका ज्ञान करे, उसमें लीनता करे तो शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। अनादि कालमें ऐसा किया ही नहीं।

मुमुक्षु :- सुननेमें तो उपयोग लगता है, पर अन्दरमें उपयोग लगता नहीं। विकल्प ही विकल्प (चलते हैं)।

समाधान :- किसमें उपयोग लगता है? बाहरमें?

मुमुक्षु :- सुननेमें।

समाधान :- सुननेमें उपयोग (लगता है)। भीतरमें अनादि काल-से दृष्टि नहीं दी। बाहरमें तो उपयोग स्थूल है तो स्थूल कर लेता है। परन्तु सूक्ष्म करनेमें उसको बहुत प्रयत्न लगता है। प्रयत्न करता नहीं, उसकी लगन नहीं है, महिमा नहीं है। उपयोग सूक्ष्म करे तो अपनी ओर दृष्टि जाती है। उपयोग सूक्ष्म करता नहीं है। स्थूल-स्थूल उपयोग बाहर भटकता है। अशुभमें-से शुभमें आता है। परन्तु शुद्धात्मा तरफ दृष्टि करनी है। वह सूक्ष्म दृष्टि करे तो अपना चैतन्यस्वरूप ग्रहण होता है, तो पकड़में आवे। दृष्टि बाहर ही बाहर रहती है। उपयोग सूक्ष्म, धीरा करके अंतर दृष्टि तो पकड़में आता है। सूक्ष्म दृष्टि करता नहीं।

मुमुक्षु :- सूक्ष्म दृष्टि करनेके लिये ...

समाधान :- सूक्ष्म दृष्टि करनेके लिये उसकी लगनी, महिमा, वह सर्व सुखरूप है, बाकी सब दुःखरूप है, दुःख लगे और अपनेमें सुखकी प्रतीति होवे कि भीतरमें ही सुख है, सर्वस्व भीतरमें है, बाहरमें कुछ नहीं है। ऐसी यदि प्रतीत करे, ऐसा निर्णय करे तो भीतरमें उपयोग जाता है, तो दृष्टि सूक्ष्म होती है।

बाहरमें अच्छा नहीं लगे, चैन नहीं पड़े, ये सब मेरे स्वभाव-से विपरीत है, यह मेरा स्वभाव नहीं है। स्वभाव नहीं है इसलिये आकुलतारूप (है), आकुलताका वेदन होता है। सुख न लगे, धीरा होकर देखे तो सब आकुलतारूप है। निराकुल स्वरूप

आत्मा यदि लगे, उसमें आनन्द लगे तो अपनी तरफ जाय। उसकी महिमा लगे। जगतमें सर्वस्व होवे तो मैं आत्मा ही हूँ। ऐसा अनुपम तत्त्व, जिसमें किसीक उपमा लागू नहीं होती। ऐसा अनुपम तत्त्व मैं हूँ। बाहरकी कोई वस्तु अनुपम नहीं है। महिमा नहीं आवे तो भीतरमें जाये कैसे? भले यथार्थ महिमा तो जिसकी परिणति यथार्थ हो, उसे यथार्थ महिमा होती है। परन्तु पहले उसका अभ्यास तो हो सकता है। अभ्यास करे कि मैं चैतन्य महिमावंत हूँ। ये कोई महिमावंत नहीं है। ऐसा पहले भी हो सकता है। ऐसा कारण तैयार होता है, बादमें कार्य आता है।

भेदज्ञानका अभ्यास करे, यथार्थ भेदज्ञान तो बादमें होता है, परन्तु पहले उसका प्रयास होता है। उसकी महिमा, लगन, उसका भेदज्ञानका अभ्यास होता है। क्षण-क्षणमें मैं चैतन्य ज्ञायक हूँ, ये सब मेरा नहीं है, मैं चैतन्य हूँ, मेरे चैतन्यमें सर्वस्व भरा है, ऐसा भेदज्ञानका अभ्यास पहले होता है। भेदज्ञान बादमें होता है, परन्तु पहले अभ्यास होता है। पहले महिमा, अभ्यास सब हो सकता है।

मुमुक्षु :- माताजी! विचार करने-से अभ्यास होता है?

समाधान :- विचार करे, विचारके साथ अंतरमें लगन होनी चाहिये। मात्र विचार-विचार नहीं, परन्तु चैतन्यकी लगन और चैतन्यकी महिमा लगे, महिमापूर्वक विचार करे तो आगे बढ़े। उसे जरूरत लगे कि करने योग्य तो बस, एक आत्मा ही है। जगतमें तो करने योग्य हो तो एक आत्माका स्वरूप ही प्राप्त करने योग्य है। ऐसी जरूरत लगनी चाहिये। तो जरूरत पूर्वक यदि विचार करे, यथार्थ समझन करे, उसकी जरूरत लगे तो वह विचार करे। तत्त्व विचार साधन है, परन्तु रुचिपूर्वक होना चाहिये।

प्रथम भूमिका विकट लगती है, परन्तु अपना स्वभाव है, वह तो सहज है। तो सहजपने प्रगट हो तो ज्ञायककी धारा सहज (हो जाती है)। फिर परिणति उसके स्वभाव तरफ ही, साधककी परिणति स्वभाव तरफ दौड़ती रहती है। उसका पुरुषार्थ उस ओर जाता है। अपना स्वभाव (है)।

प्रथम भूमिकामें अभ्यास करे तो उसे कठिन लगता है। बाकी तो अपना स्वभाव है इसलिये सहज है और सुगम है। जिसे स्वभाव प्रगट हो, उसे सहज धारा प्रगट हो जाती है। ज्ञायककी धारा, स्वानुभूति, उसकी पुरुषार्थकी धारा सहजपने, सुगमपने प्राप्त होती है। स्वभाव है इसलिये वह दुर्लभ नहीं है। दुर्लभ अनादि कालमें स्वयं पर तरफ गया है इसलिये उसे दुर्लभ हो गया है। परन्तु स्वभाव तरफ दृष्टि करे और स्वभाव तरफ प्रयास करे तो वह सुगम और सरल है। आचार्यदेव कहते हैं न, तू उग्रता-से छः महिने पुरुषार्थ कर। फिर यदि प्राप्त न हो (ऐसा नहीं है), उसे प्राप्त हुए बिना रहता ही नहीं। परन्तु स्वयं प्रयास नहीं करता है। प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो!

जन्म कल्याणक
ता. २२-१-२०२४

मंगलाचरण

चत्तारि मंगलं, अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलीपण्णत्तो धम्मो मंगलं

चत्तारि लोगुत्तमा, अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा,

केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

चत्तारि शरणं पव्वज्जामि, अरहंते शरणं पव्वज्जामि, सिद्धे शरणं पव्वज्जामि,

साहू शरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं शरणं पव्वज्जामि ।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी ते तरे,

सकल कर्मनो आणे अंत, मोक्ष तणा सुख लहे अनंत,

भाव धरीने जे गुण गाय, ते जीव तरीने मुक्ति जाय,

संसारमांहि शरण चार, अवर शरण न कोई, जे नर-नारी आदरे, तेने अक्षय अविचल पद होय ।

अंगूठे अमृत वसे, लब्धि तणा भंडार, ज्यां गुरु गौतमने समरिये तो सदाय मन वांछित फल दातार।

श्रोता : माताजी दूसरा एक प्रश्न है कि छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, नव तत्त्व, हेय-ज्ञेय-उपादेय तत्त्व, द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, वीर्य का ज्ञान सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हेतु क्या जानना प्रयोजनभूत है ? कि एक ध्रुव जीव स्वभाव जानने से मुक्तिमार्ग पर जा सकते है।

पूज्य बहिनश्री : अधिक शास्त्रज्ञान हो तो जानने में आये ऐसा नहीं है, मूल प्रयोजनभूत तत्त्व को पहिचाने। यह ध्रुव और उस का द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप एक आत्मा उसके गुण, पर्यायें स्व-पर का भेदज्ञान वह ही प्रयोजनभूत है कि मोक्षमार्ग में जो प्रकट होता है। वह ही उसे प्रयोजनभूत हो उतना उसे जानता है। लेकिन मोक्षमार्ग प्रकट होता है। उसमें अधिक पहिचाने तो होता है ऐसा नहीं है। लेकिन प्रयोजनभूत तत्त्व की तो पहिचान करे। शिवभूति मुनि कुछ भी जानते नहीं थे लेकिन उनको यह भेद यह दाल पृथक और छिलके पृथक, बाई दाल धोती थी उसमें से दाल पृथक, छिलके पृथक ऐसा मेरा आत्मा पृथक और विभाव पृथक है। ऐसा भेदज्ञान करके स्व-पर का भेदरूप विज्ञान करके अंतर में लीन हो जाय। लेकिन स्व-पर का भेदविज्ञान में, मैं द्रव्य हूँ और यह विभाव है। मैं अनादि का शुद्धात्मा हूँ और यह विभाव में

पर्याय है। इस पर्याय में विभाव होता है। लेकिन यह मेरा स्वभाव नहीं स्वभाव-विभाव का भेदज्ञान करके अंतर में उतर जाता है, उसमें उसका सब कुछ आ जाता है। जीवतत्त्व, आस्रव, संवर, निर्जरा सब कुछ। अंशे साधकदशा होकर विशेष होती है, विशेष पुरुषार्थ निर्जरा होती है। और पूर्ण होने से मोक्ष होता है ऐसी उसकी परिणति में सब कुछ आ जाता है।

तिर्यंचो कुछ भी जानते नहीं है। उन तिर्यंचों कुछ भी जानते नहीं है, शब्द नहीं आते है लेकिन स्व-पर का भेदविज्ञान होता है कि मैं आत्मा हूँ, यह विभाव है, स्वभाव-विभाव का भेदज्ञान होता है। उसमें यह मैं चैतन्यस्वभाव, ज्ञायकस्वभाव, आत्मा यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं और यह मेरे पुरुषार्थ की मंदता से होता है। भेदविज्ञान के उसके भाव में सब कुछ आ जाता है। नाम आते नहीं है मैं यह ज्ञायक हूँ और यह विभाव की परिणति मेरे स्वभाव में नहीं। ऐसा भेदविज्ञान कर के ज्ञायक को ग्रहण करता है। और यह ज्ञायक की ग्रहणता में आगे जाता है, आगे जाने का पुरुषार्थ, ... ज्ञायक की दृष्टि को दृढ रखने का पुरुषार्थ, संवर अमुक स्वरूपाचरण चारित्र यह सब कुछ उसमें आ जाता है। नव तत्त्व का सब कुछ उसमें आ जाता है। लेकिन उसे नाम नहीं आते है लेकिन स्व-पर भेदज्ञान होता है। उसमें नव तत्त्व की सभी जो उसकी साधकदशा में सब कुछ आ जाता है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र और यह दर्शन और ज्ञान जो प्रतीत स्वयं की यह मैं चैतन्य उसमें अखंड द्रव्य पर दृष्टि गई और यह पर यह विभाव पर और मैं स्व उसमें यह ज्ञान का ज्ञान स्व-पर को जानता है यह आ जाता है, स्वयं की ओर लीनता करता है। उसमें अंश में स्वरूपाचरण चारित्र आता है। अर्थात् उसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र की विशेष लीनता का प्रयत्न भी करता है। अर्थात् दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद भी आ जाते है। उसके नाम भी आते नहीं है।

कोई तिर्यंचों पाँचवाँ गुणस्थान को प्रकट करते है। अर्थात् उसकी विशेष लीनता को भी प्रकट करते है। अर्थात् उसमें उसे चारित्र की दशा दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भेदों भी आ जाते है। अर्थात् भेद क्या अभेद क्या ? यह साध्य-साधक की उसकी जो उसके साध्य-साधक का पंथ है। उन के नाम बिना भी उसमें आ जाते है, अर्थात् कुछ प्रयोजनभूत ज्ञान होना चाहिये। ध्रुव को पहिचाने, ध्रुव यथार्थ पहिचाना कब कहा जाय कि वह ध्रुव यथार्थ जाने उसके सभी पक्ष आ जाते है। तो उसने यथार्थ ध्रुव को पहिचाना है। मैं ज्ञायक ध्रुव हूँ और यह विभाव नहीं, ऐसे उसके जो प्रयोजनभूत पक्ष आ जाना चाहिये। अकेला ध्रुव अर्थात् उस ध्रुव की अंदर शुष्करूप से अकेला ध्रुव वह मुझ में कुछ नहीं है। नहीं अर्थात् उसकी पर्याय में भी नहीं और यह पुरुषार्थ की मंदता से होता है उसका कोई विवेक जैसा न आये तो वह ध्रुव उसका यथार्थ ग्रहण किया न ! ऐसे ध्रुव में सभी पक्ष आ जाते है, ध्रुव वह ध्रुव एक ज्ञायक ध्रुव, उसमें सब कुछ आ जाय लेकिन यह यथार्थरूप से कब ग्रहण होता है, कि सब कुछ आ जाना चाहिये तभी वह यथार्थ ग्रहण किया है।

दृष्टि सम्यक् ज्ञायक हूँ ऐसी दृष्टि सम्यक् कब कही जाय ? कि उसके साथ में ज्ञान भी सम्यक् ज्ञान का ज्ञान जो विवेक करता है। वह ज्ञान की विवेक और दृष्टि वह दोनों सम्यक् हो तो वह सम्यक् कहा जाता है। लेकिन ज्ञान सम्यक् न हो तो दृष्टि सम्यक् होती नहीं है और दृष्टि सम्यक् न हो तो ज्ञान भी सम्यक् होता नहीं है इसलिये उसमें सम्यक् हो तो वह ध्रुव ज्ञान करे तब भी उसमें सब आ जाते है। लेकिन उसमें संक्षिप्त में स्व-पर का भेदविज्ञान उसमें द्रव्य दृष्टिपूर्वक का स्व-पर का भेदविज्ञान, लेकिन वह भेदविज्ञान अकेला होता ही नहीं है। भेदविज्ञान किसे कहते है कि द्रव्य दृष्टिपूर्वक होय तो ही भेद। भेद किससे पड़ते है। स्वयं स्वयं को ग्रहण करे तो भेद पड़ते है। स्वयं को ग्रहण किये बिना भेद कहाँ से

होता है ? कि मैं यह चैतन्य हूँ और यह नहीं, ऐसा स्वयं को ग्रहण किये बिना भेद हो कहाँ से। यथार्थ भेदज्ञान हो उसमें द्रव्यदृष्टि भी आ जाती है।

भगवान को पहिचाने वह स्वयं को पहिचानता है ऐसा संबंध है। भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने वह स्वयं के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है। वह स्वयं के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है। भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय ऐसा निमित्त-उपादान का संबंध है। लेकिन वह द्रव्य-गुण-पर्याय में सब कुछ संक्षिप्त में आ जाता है। अनादिकाल से मार्ग को जाना नहीं उसमें एक निमित्त-उपादान का ऐसा संबंध है कि प्रथम एकवार भगवान की वाणी कोई गुरु की वाणी प्रत्यक्षरूप से मिले तब उसके अंतर में से कोई अपूर्वता लगती है ऐसा निमित्त होता है। करता है स्वयं से लेकिन उसमें ऐसा निमित्त-उपादान का संबंध विद्यमान होता है। ऐसा एक ध्रुव ज्ञायक में आ जाय लेकिन उसकी कभी उसमें भेद और यह सभी बाजूओं के प्रयोजनभूत पक्ष आ जाना चाहिये। सभी पक्ष आ जाय, अकेला ध्रुव तो शुष्क ध्रुव ऐसा हो जाय तो वह यथार्थ नहीं है।

श्रोता : सभी पक्ष पहिचाने बिना ऐसे सीधे ध्रुव पर नहीं जा सकते ?

पूज्य बहिनश्री : ऐसा सीधा जा नहीं सकते, सभी पक्ष लेकिन अधिक ज्ञान हो कि अधिक शास्त्र जाने। जाने तो अधिक लाभ का कारण है। लेकिन न जाने तो उसे संक्षिप्त में जानने स्व-पर भेदविज्ञान भी उसमें आ जाते है।

श्रोता : प्रथम ध्रुव स्वभाव पर नजर करना पश्चात् सभी पक्ष जानना ऐसा कुछ ?

पूज्य बहिनश्री : किन्तु वह प्रथम ध्रुव पर जाता है तो उसे सभी पक्ष आ ही जाते है। लेकिन ध्रुव स्वयं को जाना नहीं विचार से निश्चित किये बिना यह ज्ञान का व्यवहार बीच में आये बिना रहता नहीं है। ज्ञान हीं विचार करे मैं कौन, पर कौन ? ऐसा विचार किये बिना उस ज्ञान का ही विवेक किये बिना वह आगे जा सकता ही नहीं है। मैं ध्रुव ही हूँ। ऐसा विचार किया ज्ञान से निश्चित किया तो बीच में ज्ञान तो आ ही जाता है। दृष्टि और ज्ञान दोनों साथ ही रहते है। दृष्टि रखो ज्ञान निकाल दो तो कोई ज्ञान निकलेगा नहीं। ज्ञान निकाल दो तो मात्र दृष्टि रहती नहीं है। आत्मा अनंतगुण से परिपूर्ण और अनंत धर्मो से परिपूर्ण है। उसमें से एक ग्रहण करो एक निकाल दो तो वस्तुस्वरूप वस्तु को सिद्ध कर सकते नहीं है। उसमें दो प्रकार का लक्ष होता हैं।

श्रोता : हे पूज्य माताजी ! आज का दिन महामंगल है, क्योंकि आज आपने शुद्धात्मस्वरूप भगवान आत्मा के साक्षात् दर्शन किये। आप विकल्पातीत हुए , पवित्र सम्यग्दर्शन प्रकट किया, तो अब हमारी विनंती है कि विकल्पातीत होने का उपाय क्या है, उसे बताकर आप हमें आशीर्वचन प्रदान करें।

पूज्य बहिनश्री : गुरुदेव ने ऐसे मार्ग को स्पष्ट किया है। गुरुदेव का परम परम उपकार है। गुरुदेव ने ही सभी मार्ग बतलाया है। स्वयं विचार करे तो समझ में आये ऐसा है। गुरुदेव ने इतना स्पष्ट किया है। ज्ञायक की पहिचान करायी, गुरुदेव ने सब कुछ (दिया है), गुरुदेव का परम परम (उपकार है), इस दास के उपर भी गुरुदेव का परम उपकार है। गुरुदेव ने कहा है और शास्त्रों में भी आता है, कि प्रथम श्रुतज्ञान से ज्ञान स्वभाव आत्मा का निर्णय करे कि यह ज्ञायक वह ही मैं हूँ। उसका निश्चय ऐसा दृढ करे कि यह सभी से पृथक ऐसा मैं ज्ञायक, यह शरीर भी मैं नहीं, यह विभाव वह मेरा स्वभाव नहीं

है, उससे पृथक ऐसा ज्ञानस्वभाव ज्ञान में अर्थात् पूर्ण ज्ञायक ऐसा निर्णय करके, ऐसा निश्चित करें। वह इतना निःशंक होता है कि कोई भी चाहे जैसा कहे अथवा कुछ चौद ब्रह्मांड पलट जाए , तो भी उसकी दृढता पलटे नहीं। इस प्रकार का निःशंक होना – ऐसा ज्ञाता में श्रद्धा का बल लाये। इस बल से ज्ञायक की दृढता कर के ज्ञायक में उग्रता करे, विभाव से विरक्ति आये। चैतन्य की ज्ञायक की महिमा आये; पर से, विभाव से, सभी से महिमा छूट जाय; यह ज्ञायक की महिमा, ज्ञायक की लगनी, रात और दिन जिसे ज्ञायक...ज्ञायक...ज्ञायकदेव के अतिरिक्त जिन्हें कहीं भी चेन पड़ता नहीं है। भेदज्ञान की धारा उग्र होने पर, प्रतिक्षण ज्ञायक की उग्रता – जिन्हें ज्ञायक की उग्रता, ज्ञायक में एकाग्रता, ज्ञायक की धून और ज्ञायक में वारंवार, ज्ञायक – ज्ञायक करता है।

यदि मति-श्रुत का उपयोग बाहर जाता है। बाह्य में जो विचारों और जो श्रुत के विचारों आते है, उसे भी स्वयं स्थिर करके स्वरूप सन्मुख जो उपयोग को स्थिर करता है, स्वरूप में लीन होने पर, वह स्वरूप में ठहर जाता है, बाह्य में जिन्हें कहीं चैन पड़ता नहीं है, ज्ञायक में एकाग्रता, ज्ञाता की उग्रता और उसमें लीनता, उसमें ठहर जाय, जो बारम्बार ज्ञायक की दोरी को स्वरूप की ओर अर्थात् स्वरूप सन्मुख करके ज्ञायक में ठहर जाता है। बारम्बार उपयोग की दोरी, ज्ञायक की दोरी स्वरूप में लीन करता है। वह विकल्पातीत होने का उपाय है, अन्य उपाय नहीं है। बारम्बार स्वरूप में ठहर जाय, तो उसके विकल्प छूट जाते है और उसको ज्ञायकदेव प्रकट होता है, उस ज्ञायकदेव में ही सब कुछ समाहित है। बाह्य कहीं भी नहीं है। आनंद उसमें, अनंत गुण उसमें, सभी जगत से पृथक – ऐसा ज्ञायकदेव, जो भव का (अ)भाव होता, अंतर में से अनंत सुख प्रगट हो, जो स्वयं का स्वभाव वह ही सुखरूप है।

शास्त्र में आता है, उतना ही सत्य परमार्थ है, जितना यह ज्ञान है। अन्य सभी से उपेय जो – इतना यह ज्ञान है। उतना ही तू है, वह ही सत्य परमार्थ है। उसमें तू संतुष्ट हो, उसमें तू रुचि कर, उस ज्ञान में सब कुछ समाहित है। ज्ञायक वह ज्ञान अनंत महिमावंत ज्ञायक स्वभाव, महिमा से परिपूर्ण जगत से पृथक ऐसा अनुपम तत्त्व है। वह ज्ञान स्वभाव में ऐसा निश्चय करके उसमें संतुष्ट होना इतना ही सत्य कल्याण है। कि जितना यह ज्ञान है। वह ज्ञान स्वभाव अन्य पर से महिमा छोड़कर उस ज्ञायक में लीन हो उतना ही सत्य परमार्थ, उतना ही कल्याण उसमें तू संतुष्ट हो और तू तेरे अंतर में उपयोग को ऐसा लीन कर कि ऐसा लीन कर कि बाह्य में जाना उसे ठीक न लगे। ऐसी लीनता कर वह विकल्प से छूटने का उपाय है। ऐसा करने पर उसकी कोई अंतर में ऐसी कोई लगनी लगने से, अंतर में ऐसी विश्रांति की विश्रांति की परिणति होने से ज्ञायक की दोरी स्वरूप सन्मुख आने से ऐसी विश्रांति और ऐसी शांति उसको प्रकट होती है, कि विकल्प छूट जाय और ज्ञायक का कोई अनुपम अनुभव, अनुपम आनंद, अनुपम स्वाद, ज्ञायकदेव जगत से पृथक, प्रत्यक्ष अनुभव में आयेगा और उसका तुझे दिखेगा (अनुभव) होगा। ऐसा तेरा यह आत्मा अलौकिक है। लेकिन उसकी भेदज्ञान की धारा की उग्रता कर। द्रव्य उपर दृष्टि कर और उसका ज्ञान कर और उसकी ओर वारंवार ठहरने का प्रयत्न कर तो वह तुझे हुए बिना रहेगा नहीं। शास्त्रो में आता है कि तू एकवार उसका पडोशी बनकर देख तो तुझे अंतर में ऐसा कोई अपूर्व चैतन्यदेव प्रकट होगा जो अनुपम है। वह ही उसका उपाय है।

श्रोता : .....बहिनश्री जो मंगलकारी मंगल धडी जो आयी उससे पूर्व आप धूनमें ऐसे गाते थे 'कंचन वरणो नाम रे मुने कोई मिलावो रे'।

पूज्य बहिनश्री : वह तो ऐसी वैराग्य की भावना आये, तब यह अंदरमें इस प्रकार का कहा जाता है, यह भगवान कैसे मिले, चैतन्यदेव कैसे प्राप्त होगा, कंचन वरणो नाम मुने कोई मिलावो कुछ भी रुचता नहीं, अंजन रेखन आंख न भावे, कुछ रुचता नही है, किसी के साथे बोलना अच्छा लगता नहीं है, खाना अच्छा लगता नही है, किसी के साथ राग अच्छा लगता नहीं है, कहीं घूमना नहीं है, कहीं चैन पडता नही है, कहीं भी एक आत्मा एक आत्मदेव मुझे कोई मिला दो। हे गुरुदेव, मुझे वह मिलवा दो। इस प्रकार कोई पृथक वस्तु है। यह अंदर ऐसी भावना लगनी आये अर्थात् ऐसी भावना होती है। अंदर अंदर वेदन को लेकर सब कुछ गाने में आता था।

बोलीये अनुभवऋद्धिधारक भगवती मात की जय हो,

स्वानुभूतिऋद्धि मार्ग प्रकाशक कृपालु कहानगुरुदेव की जय हो.....

अमृत वाणी (भाग-३)

(प्रशममूर्ति पूज्य बहेनश्री चंपाबहेन की आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा)

ट्रेक-७१

मुमुक्षु :- माताजी! सत् चिद् आनन्द। चिद्का अर्थ क्या है? सच्चिदानन्द स्वरूप।

समाधान :- सत् चिद्। चिद् अर्थात् ज्ञान होता है। चैतन्य ज्ञान चिद्, ऐसा होता है। चिद् अर्थात् ज्ञान। सत् ज्ञानानन्द स्वरूप है।

मुमुक्षु :- चेतनता..

समाधान :- चेतन भी होता है और ज्ञान भी होता है। चिद् अर्थात् ज्ञान।

मुमुक्षु :- सत् जो शब्द है, अस्तित्वगुण, उसमें भाव नहीं आता है। उसका मूल्य क्या है? जैसे हवाके बिना नहीं चलता, तो उसकी महत्ता बहुत है। वैसे अस्तित्वकी महत्ता बहुत है, परन्तु आनन्दमें जो भाव रहा है, वैसा सत्में भाव नहीं आता। सत्की महिमा, सत् स्वरूप है, सत्की महिमा कैसे आये?

समाधान :- वह तो जो वस्तुकी मौजूदगी है, उस मौजूदगीमें गुण होते हैं। जिसकी मौजूदगी ही नहीं है, उसमें गुण कैसे? सत् वस्तु है। एक वस्तु है, चैतन्य एक है। जड़ है, चैतन्य है, वैसे सब है। उसका अस्तित्व हो, उसमें ज्ञान होता है, आनन्द होता है। अस्तित्व हो उसमें यह सब है। अस्तित्व ही नहीं है, जिस वस्तुकी मौजूदगी ही नहीं है, तो ज्ञान और आनन्द किसमें होंगे? वह सब गुण है। ज्ञान, आनन्द सब।

सत् अर्थात् एक वस्तु है। एक हयाती है। मैं एक आत्मा हूँ। हूँ अर्थात् एक

अस्तित्वगुण, एक अस्तित्व, चैतन्यरूप मेरा अस्तित्व है। यह जड़ है, मेरा अस्तित्व नहीं है। मैं तो सत् स्वरूप, आनन्द स्वरूप (हूँ)। आनन्द गुण है, परन्तु सत् एक वस्तु है। उस वस्तुकी महत्ता है। वस्तु है, पहले वस्तु है तो कैसी है? ज्ञान और आनन्दसे भरी है। ज्ञान और आनन्द किसमें है? सत्में है। सत्-मैं एक आत्मा हूँ। अपना अस्तित्व ग्रहण करनेका है। यह जड़ मैं नहीं हूँ। मैं हूँ। मैं एक अस्तित्वस्वरूप वस्तु हूँ। अस्तित्वमें एक गुण नहीं लेना, पूरा पदार्थ उसमें आ जाता है। सत्रूप वस्तु है, उसमें पूरा पदार्थ आ जाता है। और वह पदार्थ कैसा है? कि ज्ञान और आनन्दादि अनन्त गुणोंसे भरा है। अस्तित्वकी महिमा है।

पहले इस प्रकार ग्रहण करे कि मैं एक अस्तित्व-मेरी हयाती है। मैं एक सत्स्वरूप आत्मा हूँ। सत् कैसा है? सत्में सब (आ जाता है)। ज्ञानरूप मेरा अस्तित्व है, आनन्दरूप अस्तित्व है, मेरा अनन्त गुणरूप अस्तित्व है। मेरे अस्तित्व कैसा है? ज्ञान और आनन्दसे भरपूर मेरा अस्तित्व है। इस प्रकार गुण और द्रव्य सब उसमें साथमें आ जाता है, एक सत्को ग्रहण करने पर।

मुमुक्षु :- हम लोग क्या कहते हैं, आनन्द .. अनुभूति है, वेदन है, इसलिये उसमें बहुत भाव भरा हो ऐसा लगता है। वैसे सत्में भाव नहीं दिखाई देता।

समाधान :- वह तो एक वेदन है। आनन्द है वह वेदन है, इसलिये भावसे भरा है। ज्ञानमें जाननेका गुण है, इसलिये वह भावसे भरा दिखता है। परन्तु अस्तित्व है वह टिकनेवाली वस्तु है। जो वस्तु टिकती ही नहीं,.. जो टिकनेवाली वस्तु अनादिअनन्त शाश्वत है, जो शाश्वत वस्तु ही नहीं है तो ज्ञान और आनन्द रहेंगे किसमें? तो वेदन किसमें होगा? एक वस्तु टिकती है तो उसमें ज्ञान और आनन्द है। टिकनेवाली वस्तु ही नहीं है तो ज्ञान और आनन्द किसमें रहेंगे?

मुमुक्षु :- इसलिये शुरूआत ही वहाँसे होती है?

समाधान :- वहाँसे-अस्तित्वसे होता है। अग्नि है वह अग्नि है, पानी है वह पानी है। परन्तु अग्नि और पानी। उसमें शीतल गुण है, उसमें उष्ण गुण है। उसके गुणसे पकड़में आता है कि उष्ण है वह अग्नि है और शीतल है वह पानी है। वैसे आत्मा ज्ञान ज्ञायकस्वरूप जो ज्ञायक है, जिसने ज्ञायकका अस्तित्व धारण किया है वह आत्मा है और जो जानता नहीं है वह जड़ है। वह गुणके द्वारा पकड़में आता है, परन्तु उसका अस्तित्व है तो पकड़में आता है। अस्तित्वके बिना जो द्रव्य ही नहीं, जो ध्रुव ही नहीं है, बिना ध्रुवके गुण कहाँ रहेंगे? ध्रुव स्वयं वस्तु है।

मुमुक्षु :- ..

समाधान :- अस्तित्वगुणके कारण वस्तुकी हयाती है। अस्तित्व नहीं है तो गुण

कहाँ रहेंगे? मेरा एक चैतन्य अस्तित्व है। ज्ञानगुणका अस्तित्व है। आनन्दका अस्तित्व है। आनन्द अस्तित्वसे भरा है। ज्ञान, आनन्द आदि सब अस्तित्वसे भरे हैं। उसका वेदन, आनन्दगुणका वेदन आनन्दस्वरूप है, जाननेका जाननस्वरूप, लेकिन अस्तित्व नहीं है तो वेदन किसका?

मुमुक्षु :- इसीलिये सच्चिदानन्दमें पहले सत् लिया।

समाधान :- सत्-पहले वस्तु है। ध्रुव एक वस्तु है। लेकिन वह है। हयातीसे टिकनेवाली। उसका भाव वह है-हयाती, उसका भाव वह है-हयाती। वह जाननेका, आनन्दका। वेदन स्वयंको (होता है)। अनादिसे स्वयं दुःखी हो रहा है, इसलिये दुःखसे छूटनेके लिये कहते हैं, सुख आत्मामें है। तो उस ओर मुड़ता है। सुख आत्मामें है, बाहर नहीं है। इसलिये वह सुखकी ओर मुड़ा। परन्तु सुख किसमें रहा है? सुख बाहर तो नहीं है। तो सुख किस पदार्थमें है?

आत्मा पदार्थ है। जौ मौजूदगी रखता है, उसमें सुख है। मौजूदगीके बिना सुख कहाँ रहेगा? हयाती साथमें होती है। हयाती उसका भाव है। अस्तित्वका भाव मौजूदगी रखना, वह है। शाश्वत है। अनन्त काल गया, अनन्त जन्म-मरण किये, कुछ भी किया लेकिन उसका अस्तित्व, ज्ञायकका अस्तित्व ज्ञायकरूप ही रहा है। चाहे किसी भी क्षेत्रमें रहा, जड़के साथ रहा, चाहे जैसे उपसर्ग, परिषह आये तो भी उसका अस्तित्व-ज्ञायकका-चैतन्यका अस्तित्व चैतन्यरूपसे छूटता नहीं, नाश नहीं हो जाता। निगोदमें रहा, नर्कमें गया, कहीं भी गया, चाहे जैसे दुःख आये तो भी चैतन्यका अस्तित्व है, वह अस्तित्व मौजूदगी रखता है। उसका भाव हयाती धरना है। अपनी हयाती ज्ञायककी ज्ञायकरूप हयाती छूटती ही नहीं, नाश नहीं होती। उसका भाव हयाती रखना है। है, हयाती रखनेवाली वस्तु है। उसका कोई नाश नहीं कर सकता। ऐसी ध्रुव शाश्वत वस्तु है। उसका भाव हयाती रखना है। उसका वेदन वह है कि हयाती रखना। ज्ञानका जाननेका वेदन, आनन्दका आनन्दरूप और हयाती रखना उस प्रकारका उसका वेदन है। हयाती, जो हयाती है।

मुमुक्षु :- ऐसा निर्णय..

समाधान :- ऐसा निर्णय करे कि मैं एक वस्तु है। जो हो उसका निर्णय होता है, नहीं हो उसका निर्णय कैसा? है उसे ग्रहण करता है, नहीं है उसका ग्रहण क्या? एक वस्तु है। तो भी वह भावसे भरा है। ध्रुव। वह खाली ध्रुव नहीं है, ज्ञायक ध्रुव। अस्तित्व कैसा? ज्ञायकका अस्तित्व, आनन्दका अस्तित्व। सब गुणसहित अस्तित्व है। उसमें गुण साथमें आते हैं। खाली अस्तित्व नहीं है, अस्तित्व खाली शुष्क अस्तित्व नहीं है। वह अस्तित्व ज्ञान आदि अनन्त गुणोंसे भरा अस्तित्व है। हयाती। हयाती

है और ज्ञानकी हयाती, आनन्दकी हयाती सबकी हयाती उसमें साथमें आती है।

मुमुक्षु :- सबके भाव ...

समाधान :- सबके भाव उस हयातीमें समा जाते हैं। हयातीमें अकेली हयाती नहीं आती, उसमें सब भाव साथमें आ जाते हैं। अनन्त गुणके भाव अस्तित्वके साथ आते हैं।

मुमुक्षु :- आत्मस्वरूप, सहज आत्मस्वरूप ... मुश्किल लगता है, फिर भी आत्माका स्वयंका स्वरूप है, जितना बोलनेमें सहज दिखता है, उतना सहज नहीं दिखता है।

समाधान :- स्वभाव सहज है, इसलिये स्वयं सहज है। अनादिसे विभावमें पडा है इसलिये सहज नहीं दिखता। ज्ञान, आनन्द, अस्तित्व आदि उसके सभी गुण अनादि अनन्त सहज है। सहज वस्तु स्वयं है, उसे किसीने बनायी नहीं है। अब, जो स्वभाव होता है वह सहज होता है। स्वभावकी उत्पत्ति करनी पड़े ऐसा नहीं है, वह तो स्वभावरूप ही है। स्वभावकी ओर जाना, अपने स्वभावमें जाना वह सहज है। उल्ट विभाव (असहज है)।

पर पदार्थको अपना करना, वह मुश्किल है। वह मेरा-मेरा करता ही रहता है, लेकिन अपना होता नहीं। कैसे हो? जो अपना नहीं है। जड़ और चैतन्य दोनों भिन्न-भिन्न हैं। भिन्न हो वह एक कैसे हो? जड़ अपना होता नहीं। परन्तु चैतन्यको स्वयंको ग्रहण करके अपनेरूप होना हो तो वह सहज है। अपने स्वभावरूप परिणमना वह सहज है।

पानी शीतल है, पानीको शीतलतारूप परिणमना सहज है। पानी अग्निके निमित्तसे गर्म हुआ, परन्तु गर्म होनेका बाद उसे शीतल होना सहज है। क्योंकि वह अग्निसे भिन्न पड़े इसलिये वह शीतल हो ही जाता है। उसे शीतल होना सहज है। पानीको गर्म रखना दुर्लभ है। परन्तु शीतल होना सहज है।

अनन्त काल गया तो भी वह शरीररूप नहीं हुआ। वह मुश्किल है, क्योंकि वह तो परपदार्थ है। उसके साथ रहा तो भी वह जड़रूप नहीं हुआ। वह मुश्किल है। और अपनी ओर झुकना, वह यदि स्वयं ज्ञायकको ग्रहण किया तो अल्प कालमें स्वानुभूति (होती है)। यदि अंतरसे ग्रहण करे तो स्वानुभूति और केवलज्ञान अल्प कालमें प्रगट करता है। क्योंकि स्वयंका स्वभाव है। उसके लिये अनन्त काल नहीं चाहिये। इसमें तो अनन्त काल गया फिर भी अपना होता नहीं। और यहाँ स्वयंको ग्रहण किया तो उसे ग्रहण करनेके बाद अनन्त काल जाता ही नहीं। अल्प भवमें केवलज्ञानकी प्राप्ति करता है। इसलिये स्वयंको ग्रहण करना और स्वयंकी प्राप्ति करना सहज है।

मुमुक्षु :- इसलिये सहज और सुलभ है। अपनी ओर मुड़े तो तुरन्त...

समाधान :- अपनी ओर मुड़े तो स्वयं प्रगट होता ही है। (परपदार्थ) अपना होता नहीं, अपना करनेका प्रयत्न करता है, कोई होता नहीं। और यहाँ तो यदि स्वयंको ग्रहण किया तो अल्प कालमें अपनेरूप हो जाता है। अपनी ओर मुड़ा सो मुड़ा। एक बार अपनी ओर गया तो फिर पहलेकी भाँति उसकी एकत्व परिणति होती ही नहीं। अल्प कालमें अपनी ओर प्रगट हुए बिना रहता ही नहीं, ऐसा सहज है। उसे मुश्किल लगता है। उसे पर-ओरका, विभाव-ओरका अभ्यास है, परन्तु यदि अपनी ओर मुड़ा तो सहज है।

मुमुक्षु :- माताजी! ऐसा लगता है कि एक क्षण विकल्पके बिना जाता नहीं, एक क्षण टिकता नहीं,.. एक क्षण विकल्पको हटा नहीं सकते। तब ऐसे लगता है कि यह सहज कैसे होता है?

समाधान :- अनादिका अभ्यास है इसलिये टिकता नहीं। स्वयं कारण थोड़ा दे तो कार्य कहाँ-से आये? उसके लिये अधिक कारण चाहिये। प्रथम भूमिका विकट होती है, श्रीमद् कहते हैं न? फिर सहज है और सरल है। हमेशा प्रथम भूमिका विकट है। क्योंकि स्वयं दूसरे अभ्यासमें है, विभावके अभ्यासमें है, उसमेंसे छूटकर स्वभावमें आना उसे कठिन लगता है। परन्तु एक बार आया तो सहज है। फिर तो पानी पानीको खिँचता अपने प्रवाहकी ओर चला जाता है। वैसे स्वयं अपने स्वभावमें चला जाता है, वह सहज है। परन्तु प्रथम भूमिका विकट है।

मुमुक्षु :- माताजी! क्षण-क्षणमें पुरुषार्थ (चाहिये)। जैसे पैसा एक-एक मिनटमें चाहिये, एक कदम नहीं बढ़ता, वैसे पुरुषार्थ भी क्षण-क्षणमें चाहिये।

समाधान :- क्षण-क्षणमें पुरुषार्थ चाहिये। व्यवहारमें ऐसा है कि पैसा चाहिये। आत्मामें पुरुषार्थकी जरूरत पड़ती है। क्षण-क्षणमें पुरुषार्थ। स्वयंकी जागृति रखनी चाहिये, तो अपनी ओर सहज होता है। यह अनादिका कैसा सहज (परिणमन है)। उसे ऐसा रस है कि एकके बाद एक विकल्प आये वह उसे सहज हो गया है। उसे उतना प्रयत्न नहीं करना पड़ता और एकके बाद एक विकल्प चलते ही रहते हैं, चलते ही रहता है। वह कैसा सहज (हो गया है)। विभावकी परिणति ऐसी सहज हो गयी है। वैसी क्षण-क्षणमें अपनी ओर जाय ऐसी अपनी ओर सहज परिणति हो तो अपनी ओर जाये। ऐसा कर नहीं सकता, उसे विकट लगता है। पानीको शीतल होना सहज है। (क्योंकि) अपना स्वभाव है। वैसे ज्ञायकको ज्ञायकरूप परिणमना सहज है। परन्तु वह करता नहीं है, अनादिका अभ्यास पर-ओरका हो गया है।

मुमुक्षु :- माताजी! शास्त्रमें शब्द तो आते हैं कि सहज आत्म स्वरूप है। पढ़ते हैं, परन्तु अन्दर .. आपने जो लिखा है कि क्षण-क्षणमें पुरुषार्थ चाहिये अथवा जैसे

आप कहते हो कि पानी...

समाधान :- पुरुषार्थ करे तो सहज होता है। पर-ओरका उसे आसान हो गया है। आत्माका दुर्लभ हो गया। आत्माका सुलभ है, करे तो होता है। प्रथम भूमिका विकट है, परन्तु वह आगे जाये तो सहज है और सुगम है।

पानी पानीके प्रवाहको खींचता ढालवाले मार्गमें (सहज चला जाता है)। ज्ञान-भेदज्ञानके मार्ग पर यदि स्वयंने अपनी परिणतिको मोड़ दिया, विवेकके मार्गमें भेदज्ञानकी ओर यदि मुड़ गया तो भेदज्ञानकी डोर ऐसी है, द्रव्यदृष्टिकी डोर हाथमें आ गयी। स्वयं स्वयंको अपनी ओर खींचता हुआ अपनी ओर एकदम जल्दी चला जाता है।

... धरसेनाचार्यको ऐसा हुआ कि कोई आवे तो... स्वप्न आया था। उन्हें क्षयोपशम कितना! कंठस्थ था फिर भी याद हो जाता था। पहले लिखनेका नहीं था। फिर उन्होंने लिखा। लिपिबद्ध किया। भावलिंगी मुनिराज आचार्य उनकी क्या बात करनी!

मुमुक्षु :- माताजी! सबसे पहले लिखा गया है, इसके पहले लिखनेकी ... यह कैसे..?

समाधान :- ऐसा क्षयोपशम था, लिपिबद्ध करनेका। उनकी शक्ति थी। लिखनेका उनको क्षयोपशम था। लिखनेकी कला तो सबको आती है, परन्तु अन्दर शक्ति उतनी है कि लिखनेकी आवश्यकता नहीं। फिर ऐसा लगा कि कालदोषके कारण सबके क्षयोपशम ऐसा होता जाता है इसलिये लिपिबद्ध किया। पहले चतुर्थ कालमें सब कला सबको आती थी। शक्ति इतनी थी कि लिखनेकी जरूरत नहीं पड़ती थी। सब याद हो जाता है। उसमेंसे ज्ञान प्रगट हो जाता था। बारह अंगका ज्ञान भीतरमेंसे हो जाता था। लिखने-पढ़नेसे नहीं होता है, भीतरमेंसे हो जाता है।

बादमें सबका क्षयोपशम मन्द हुआ, आचार्यको विचार हुआ कि किसीको याद नहीं रहता ऐसा क्षयोपशम हो गया है, इसलिये लिपिबद्ध किया। शास्त्र लिखनेकी शक्ति तो थी। कैसे शास्त्र रचे! कितनी बात षट्खण्डागममें! उनके क्षयोपशमकी क्या बात करनी! उनकी-आचार्यकी दशाकी क्या बात!!

मुमुक्षु :- .. आपसे कई बार सुनते हैं फिर भी भूल जाते हैं, माताजी!

समाधान :- .. अभ्यास करना, उसका आशय ग्रहण करके बारंबार भीतरमें ऊतारनेसे होता है। शब्द याद नहीं रहे, भूल जाय तो भी उसका भाव याद रहे, आशय ग्रहण करनेसे हो सकता है। इतना क्षयोपशम तो होता है कि आशय ग्रहण हो सके। शिवभूति मुनिको तो इतने शब्द भी याद नहीं रहते थे। उनके गुरुने कहा कि मा-रुष, मा-तुष, उतना भी याद नहीं रहा। भीतरमें उन्होंने आशय ग्रहण कर लिया कि मेरे गुरुको ऐसा कहना था कि दाल और छिलका (भिन्न है)। (एक औरत दाल) धोती थी।

तुष-छिलका अलग और दाल अलग है।

वैसे ज्ञायक आत्मा भिन्न है और विभाव, विकार सब भिन्न-जुदा है। ऐसा आशय ग्रहण कर लिया। मारुष, मातुष याद नहीं रहा और मासतुष हो गया। शब्द भूल गये, परन्तु आशय ग्रहण हो गया। यह विभाव परिणति मेरा स्वभाव नहीं है, मैं तो ज्ञायक हूँ, जाननेवाला हूँ, ऐसा मेरे गुरुने कहा था। आत्मा भिन्न है। भिन्न है उसका आशय ग्रहण करके, ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, ज्ञायककी परिणति प्रगट करके भीतरमें इतनी लीनता हो गयी कि सम्यग्दर्शनमें ज्ञायक तो ग्रहण हो गया और उतनी दृढ़ प्रतीति हुयी और लीनता भी उतनी हो गयी। चारित्र भी इतना हो गया कि अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्रगट हो गया।

इस प्रकार आशय ग्रहण करनेसे होता है। शब्दकी वहाँ जरूरत नहीं पड़ती। थोड़ा भी आशय ग्रहण कर ले तो हो सकता है। सब शास्त्रका ज्ञान होवे, सब होवे तो अच्छा है, इसमें लाभका कारण होता है। विचारनेमें द्रव्य-गुण-पर्यायका, उत्पाद-व्यय-ध्रुवका स्वरूप विचार करनेमें, आत्माका स्वरूप विस्तारसे समझनसे लोभ होता है। तो भी याद न रहे तो भी प्रयोजनभूत तत्त्वको समझ ले तो भी हो सकता है।

मुमुक्षु :- माताजी! प्रयोजनभूत तत्त्वोंको सुगमतासे समझनेके लिये सबसे सरल शास्त्र कौन-सा है?

समाधान :- सरल उपाय तो एक आत्माको ग्रहण करे।

मुमुक्षु :- कौन-सा शास्त्र सरल है?

समाधान :- भेदज्ञानकी बात जिसमें आती हो, वह शास्त्र सरल है। परन्तु समयसारमें सब आ जाता है। तो भी उसका रहस्य बतानेवाले तो गुरुदेव थे। शास्त्र तो थे, परन्तु उसका रहस्य आचार्यदेव क्या कहते हैं? इन सबका रहस्य तो गुरुदेवने बताया है। समयसार शास्त्रमें तो सब आ जाता है। ज्ञायककी बात, स्वभावकी, विभावकी सब, कर्ता-अकर्ता सब बात उसमें (आती है)। मुक्तिके मार्गमें प्रयोजनभूत सब बात समयसारमें स्वानुभूतिकी सब बात आ जाती है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

तप कल्याणक

ता. २३-१-२०२४

मंगलाचरण

चत्तारि मंगलं, अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलीपण्णत्तो धम्मो मंगलं

चत्तारि लोगुत्तमा, अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा,

केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

चत्तारि शरणं पव्वज्जामि, अरहंते शरणं पव्वज्जामि, सिद्धे शरणं पव्वज्जामि,

साहू शरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं शरणं पव्वज्जामि ।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी ते तरे,

सकल कर्मनो आणे अंत, मोक्ष तणा सुख लहे अनंत,

भाव धरीने जे गुण गाय, ते जीव तरीने मुक्ति जाय,

संसारमांहि शरण चार, अवर शरण न कोई, जे नर-नारी आदरे, तेने अक्षय अविचल पद होय ।

अंगूठे अमृत वसे, लब्धि तणा भंडार, ज्यां गुरु गौतमने समरिये तो सदाय मन वांछित फल दातार।

श्रोता : किसी (मुनिराज) को ही ऋद्धि प्रकट होती होगी ?

पूज्य बहिनश्री : किसी को होती है। वे स्वयं तो आत्मा की तो साधना करते होते है। किसी को ऐसी ऋद्धि प्रकट हो, किसी को प्रकट नहीं होती। ऋद्धि के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। वे तो आत्मा में छठवें-सातवें गुणस्थान में झुलते रहते है, अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में अंतर में जाते है, पुनः बाहर आये लेकिन छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते रहते है अर्थात् श्रेणी चढ़कर केवलज्ञान को प्राप्त हो जाते है। ऋद्धि प्रकट भी न हुई हो और किसी को ऐसी अंतर में कोई ऐसी निर्मलता इस प्रकार की किसी प्रकार की हो कि ऋद्धियाँ प्रकट हो, अनेक प्रकार की ऋद्धियाँ आती हैं, रसऋद्धि और बुद्धिऋद्धि कई प्रकार की ऋद्धियाँ प्रकट होती है। अंतर में कोई इस प्रकार की परिणति हो जाय कि ऋद्धि प्रकट होती है। किसी को न

भी प्रकट हो, छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते हो, बाहर आये तब स्वरूप का चिंतवन करते हो, और अंतर में जाय तब निर्विकल्पदशा में झूलते हो, बाहर आये तो सूक्ष्म चिंतवन में कोई बार आहार का विकल्प आये तो आहार लेने जाय बाकी आत्मा में ही रहते है, ऐसी मुनिराज की दशा होती हैं। और ऐसी ऋद्धि जो ऋद्धि की एक पूजा की जाती है। ऐसे ऋद्धिधारी मुनिवरों भी होते हैं।

श्रोता : ऋद्धि प्रकट होने का कारण उनकी परिणति उस प्रकार की (होती) है।

पूज्य बहिनश्री : परिणति इस प्रकार की कोई निर्मलता हो जाय कि उन्हें ऋद्धि प्रकट होती है। मनबल ऋद्धि और वचनबल ऋद्धि और कायबल ऋद्धि अंतर में ऋद्धि प्रगट होती है। ऐसी कोई परिणति की दशा कि यह मन, मन के वचन भी, वाणी भी ऐसी ही रहती है, शरीर भी ऐसा हो जाता है, ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध उसका ऐसा हो जाता है, अंतर में कोई क्षयोपशमभाव बुद्धिऋद्धि भी प्रकट हो जाती है। कई प्रकार की ऋद्धियाँ प्रकटती हैं। इस प्रकार की कोई परिणति हो जाती है। शरीर में बदलाव हो जाता है, यहाँ उनको बाहर से ऐसा हो जाय कि जिस घर आहार ले वहाँ आहार की वृद्धि हो जाय इस प्रकार ऐसा पुण्य से बाहर से वह पुण्य ऋद्धि ऐसी प्रकट हो जाय, ऐसा हो जाय, ... किसी को ऐसी प्रकट होती है किसी को प्रकट नहीं होती है। घृतस्त्रावी ऋद्धि और अमृतस्त्रावी ऋद्धि, आहार लेने पर घृत (घी) जैसा हो जाय, अमृत जैसा हो जाय ऐसा सब कुछ आता है। किन्तु यह सब हो तो ही केवलज्ञान प्रकट हो ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा की साधना करते-करते पृथक-पृथक प्रकार की किसी को ऋद्धियाँ प्रकट हो जाती हैं।

श्रोता : जैसे चौथे गुणस्थान में तारतम्यता में अंतर होता है, कोई समकितीओं में होता है तो, मुनिराज में भी ऐसा तारतम्यता में अंतर हो तो ?

पूज्य बहिनश्री : गुणस्थान तो एक का एक ही होता है। छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान। गुणस्थान चौथे से गुणस्थान भी एक ही होता है गुणस्थान तो एक ही होता है। उसमें किसी मुनि को क्षयोपशम अधिक होता है, किसीको अल्प हो इस प्रकार अनेक प्रकार होते है लेकिन उसका केवलज्ञान के साथ कोई सम्बन्ध होता नहीं है। किसी को अंतर में किसी प्रकार की निर्मलता इस प्रकार की हो जाय, बुद्धिऋद्धि हो जाती है। यह सभी बाहर का है। शरीर को ऋद्धि आदि सब हो जाता है। उसको छूकर पवन आये तो किसी का रोग मिट जाये ऐसी ऋद्धियाँ होती हैं।यह सह कुछ पुदगलों में बदलाव हो जाता है। आत्मा के साथ सम्बन्ध है लेकिन उसके साथ में कोई छठवें-सातवें गुणस्थानवाला को कोई सम्बन्ध नहीं है। सभी को एक ही प्रकार का प्रकट हो ऐसा नहीं है। वह चतुर्थ गुणस्थान में बदलाव की बात अलग है। यह छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान में झूलते उनका गुणस्थान एक ही प्रकार का है चौथे गुणस्थान में रहते हो तो गुणस्थान उस प्रकार का है।

श्रोता : श्रेणी चढने से जो श्रेणी चढ़ने पूर्व में परिणति में अधिक गाढ़ापन आता है ... उपाय धारण नहीं कर सका ...

पूज्य बहिनश्री : ऐसा कुछ होता नहीं है, ऋद्धि हो तो श्रेणी शीघ्र चढ़े ऐसा कुछ नहीं है। श्रेणी चढ़ने के लिये अंतर की परिणति का गाढ़ापन हो जाय, लीनता की वृद्धि होती जाय। अंतर नहीं अंतर का साथ संबंध है। यह तो द्रव्यदृष्टि का जोर है अंतर में छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान में झूलते है, ऐसा करते करते अंदर में बारम्बार झूलते-झूलते ऐसी क्षण आ जाय कि केवलज्ञान श्रेणी चढ़ जाय। चौथे गुणस्थान में भी वह, चोथे गुणस्थान में रहेते अंतर लीनता की वृद्धि हो जाय तो

गुणस्थान आगे चला जाता है। चौथे गुणस्थानवाले भेदज्ञान की धारा रहती है और अंतर में निर्विकल्प दशा होती है। बाहर आये तो उपयोग भेदज्ञान की धारा तो निरंतर उसे रहती है। ज्ञायक यह ज्ञायक है। यह जो विकल्प आते है उससे मैं पृथक् हूँ, यदि ऐसे विकल्प आये तो भी उसके साथे एकत्व होते नहीं है। शरीर के साथे एकत्व होते नहीं है, विकल्प के साथे एकत्व होते नहीं है, चाहे कैसे भी शुभ परिणाम हो तो उसके साथे एकत्वपना होता नहीं है।

लेकिन बीच में आते है देव-गुरु-शास्त्र की महिमा, सब कुछ आता है सम्यग्दृष्टि को आते है, मुनिओं को आते है, सभी को आते है लेकिन उसके साथ एकत्वपना होता नहीं है, ज्ञायक की धारा वर्तती रहती है। उसमें निर्विकल्पदशा चौथे गुणस्थान, छठवाँ-सातवाँ तो अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में आता है।

श्रोता : माताजी ! चारित्र की स्थिरता और ऋद्धि के कारणरूप परिणाम को निमित्त-नैमित्तिक संबंध की विशेषता कह शकते हो।

पूज्य बहिनश्री : वह स्थिरता के परिणाम कोई पृथक प्रकार के कि जिससे ऋद्धि प्रकट हो, इस प्रकार के स्थिरता के परिणाम होते है। ऐसे कोई पृथक जातिके निर्मलता के स्थिरता के परिणाम होते है उसके साथे ऋद्धि प्रकट हो इस प्रकार के सम्बन्धवाले होते है। ऐसे वर्तमान में इस प्रकार की कोई निर्मलता हो कि ऋद्धि प्रकट होती है। किसी को वैक्रियऋद्धि प्रकट हो, किसी को कायऋद्धि प्रकट हो। लेकिन किसी को ऋद्धि न हो और अंतर्मुहूर्त में श्रेणी चढ़ जाते है। वर्तमान की निर्मलता के परिणाम कोई इस प्रकार के होते है कि जिसका ऋद्धि के साथ संबंध होता है। और यह क्षयोपशमज्ञान भी पुण्य की ऋद्धि प्रकट हो उसका कोई परिणाम के साथ संबंध हो जाता है। उसका वर्णन शास्त्र में आता नहीं है किन्तु कोई इस प्रकार के परिणाम आये कि उसका उस प्रकार का शरीर में वाणी में बदलाव हो जाता है। भगवान को केवलज्ञान होता है, तो यह शरीर स्फटिक समान हो जाता है इस प्रकार का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

श्रोता : समयसार के १०४ कलश में कहा है कि सर्व कर्म का निषेध करने में आने पर, निष्कर्मदशा को प्राप्त मुनिओं कुछ अशरण नहीं है, ऐसा अंदर में ज्ञान का विपुल शरण लेकर परम अमृत का पान करते है, तो कृपा करके वह अंदर के शरणरूप, ज्ञान का स्वरूप समझाने की हमारा पर कृपा किजीये।

पूज्य बहिनश्री : भव्य निष्कर्म अवस्था में शुभाशुभ दोनों सुकृत और दुष्कृत सभी का निषेध करने से मुनिओं क्यां कहाँ पर स्थित रहेंगे ? और किसका आश्रय लेंगे। निषेध से सर्वस्व सभी का निषेध किया जाय तो मुनिओं किसके शरण से मुनिपना पालन करेंगे ? कि मुनिओं को शुभभाव हो तो ही मुनिपने का पालन कर सकते है, ऐसा नहीं है। उसे शुभाशुभभाव दोनों छूट जाय ऐसी निष्कर्म अवस्था, ऐसी निवृत्त अवस्था में मुनि को स्वयं अपना ही शरण है।

शुद्धात्मा का आश्रय तो उनको सम्यग्दर्शन में हुआ है लेकिन चारित्र में भी उसकी स्वरूप रमणता में भी यह निष्कर्म अवस्था में दोनों भाव छूट जाय तो भी उसे स्वयं का शुद्धात्मा का ही आश्रय है, उसका ज्ञान स्वयं स्वयं में आचरण करता व रमण करता हुआ उसमें प्रकट होता है, उसमें वे अमृत पान करते है उस में वे लीन रहते है, उसे अन्य कोई दूसरे आश्रय की आवश्यकता नहीं है। वह तो क्षण क्षण में बहार आये तदपि अंदर में ही उनकी परिणति पलटती है वे निरालंबनरूप स्वयं अपने में ही रहते है।

शुद्धात्मा का आश्रय है उन्हें शुभभावों का आश्रय द्वारा अंदर जाते है ऐसा भी नहीं है। शुभभाव आते है तो शुभभाव से छूटकर अंदर में जाते है वह शुभभाव आया इसलिये उसका आश्रय मिलेगा मुनि ऐसे नहीं है। शुभभाव का तो निषेध वर्तता है वैसे तो दृष्टि में से उसका निषेध हो गया है। लेकिन सम्यग्दर्शन की भूमिका में तो कोई प्रत्येक भाव ही होते है। बाहर से तो सब कुछ छोड़ दिया है और यह शुभभावों का भी निषेध करने में आता है। मुनिओं को शुभ भावों कुछ प्रकार के होते है, अशुभ सत्ता में वे कोई दिखाई देते भी नहीं है। वह तो संज्वलन का उदय मात्र है तो उसे शुभ में भी उसी का आश्रय होता है। कोई शास्त्र वांचन करे, कोई कुछ लिखे, कोई उपदेश दे तो ही मुनिपने का पालन होता है ऐसा नहीं है। मुनि का उपयोग बाहर आये तो शुभभाव आते है लेकिन उनका आश्रय न हो तो वे मुनिपना किसके आश्रय से पालन करेंगे? पंच महाव्रत और २८ मूलगुण यह सभी शुभभावों हैं इस ओर से उसका उपयोग छूटी गया तो मुनि कहाँ स्थित रहेंगे ऐसा उनको नहीं है। मुनि स्वयं अपने में स्थित रहते है उन्हें तो अधिक शुद्धात्मा की ही आश्रय है जो आत्मा को आत्मा तो उन के हाथ में है।

आत्मा उनकी हथेली में है। प्रतिक्षण अपने अंतर में जाते हैं शुद्धात्मा का आश्रय जिन्हों ने किया उस ओर झुका मुनि का आचरण तो रमणता प्रकट हुई आत्मा उन के हाथ में हथेली में इस प्रकार एकदम स्वयं अपने में अंतर्मुहूर्त में चले जाते है, चले जाते है, आनंद अमृत में लीन होते है, आनंद से परिपूर्ण ज्ञान से परिपूर्ण, अनंतगुणों से परिपूर्ण आत्मा उस में प्रतिक्षण चला जाता है। आत्मा तो उनको हस्तावलम्ब मात्र है जो क्षण-क्षण में चला जाता है (छठवाँ-सातवाँ) उनको कोई शुभभाव के आश्रय की आवश्यकता नहीं है। उनको ऐसी भावना है कि मैं पूर्ण वीतरागदशा कब प्राप्त करुं? यह शुभभाव यह बीच में यहाँ उपस्थित रहना पडता है, मैं कब वीतरागदशा प्राप्त करूं, शुभभाव हो तो मुनिपने का पालन हो ऐसा नहीं है।

मुनिपना का तो चैतन्य के आश्रय पालन होता है। चैतन्य की परिणति के आश्रय से पालन होता है। चारित्र तो स्वरूप रमणता में विद्यमान है। शुभभाव में चारित्र विद्यमान नहीं है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों स्वयं के आत्मा के आश्रय में रहे हुए है। वो कोई शुभभाव के आश्रय से रहे हुए नहीं है वे तो मात्र व्यवहार उनके साथे होता है अर्थात् कहा जाता कि मुनिपना पंचमहाव्रत २८ मूलगुण उसमें स्थित है बाकी चारित्रदशा तो अंदर चैतन्य के आश्रय से मुनिपणुं उसमें मुनिपना आनंद से पालन करते है उसी आनंद में झूलते-झूलते केवलज्ञान को प्राप्त करते है। ऐसी मुनिओं की दशा होती है और बारम्बार गुरुदेवश्री और प्रत्येक महात्माओं, पंचपरमेष्ठी भगवंतों, गुरुदेवश्री वे सभी यह ही मार्ग दर्शा रहे है।

श्रोता : मुनि मुनिपने की मर्यादा लांघकर विशेष बाहर जाते नहीं है मर्यादा छोड़कर विशेष बाहर जाय तो स्वयं की मुनिदशा ही न रहे तो मुनिराज को कैसी मर्यादा होती है?

पूज्य बहिनश्री : मुनि स्वयं की मर्यादा को लांघकर बाहर जाते नहीं है और जो दशा है आत्मा में छठवें-सातवें गुणस्थान में क्षण-क्षण में अंतर्मुहूर्त ... अंतर्मुहूर्त में झूलते रहते है। क्षण में बाहर आये तो क्षण में अंतर में जाते है। बाहर आये तो श्रुतज्ञान के विचार होते है, देव-गुरु-शास्त्र की ओर के विचारो होते है, शुभ विकल्प होता है लेकिन उसमें अधिक देर रुकते नहीं है। तुरंत अंतर में जागृत रहते है, क्षण-क्षण में छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते होते है। ऐसी दशा में से वे बाह्य शुभभावों में भी अधिक देर ठहरते नहीं है। उनको शुभभाव का भी इतना रस चढ़ता नहीं है कि मुनि की मर्यादा जो सातवें गुणस्थान में जाने की सहज चले जाते हैं, उनको शुभभाव में इतना रस आता है कि शास्त्र लिखते है। इसलिये

शास्त्र में इतना अधिक रस चढ़ गया कि इतनी अधिक उनको एकत्वता हो गई कि सातवाँ गुणस्थान न आये तो उनकी मुनिदशा भी चली जाय, शास्त्र लिखते हो, भगवान के सूत्र रचते हो, भगवान के स्तोत्र बोलते हो, उपदेश देते हो उन सभी में ऐसा रस लग जाता है कि आत्मा को ज्ञायकधारा तो होती है लेकिन अंतर में लीनता करने का उनको छूट जाता है। ऐसा भी न बने तो मर्यादा छूट गई मुनिपने की और विकल्प में भी उनकी मुनि के जो कार्यों पंचमहाव्रत के हैं उनकी मर्यादा में स्थित रहते है। उससे विशेष उनको गृहस्थ के जो कार्य होते है ऐसे कार्यों में वे शामिल होते नहीं है, गृहस्थ के साथ विशेष बातचित करना, गृहस्थों के कार्यों में शामिल होना, कोई व्यवस्थाओं में लगना, ऐसा कार्य मुनि को होता नहीं है, तो उनकी मुनिदशा पलटी जाती है। ऐसा उनको बाह्य में होता नहीं है, अंतर में भी शुभभाव में विशेष ठहरते नहीं है, तो अंतर में तो ऐसा उनको रस लग गया कि यह अंतर में अप्रमत्तदशा आये ऐसा उनको होता नहीं है।

मर्यादा छोड़कर बाहर जाते नहीं है। मुनिओं को तो आत्मा में ही रुचता है। यह शास्त्र में आता है कि सब कुछ छूट गया है। सभी का निषेध आप करते हो तो मुनिदशा मुनिपने का किस प्रकार पालन करेंगे ? मुनि किसके आश्रय से मुनिपना पालेंगे ? कि मुनि कोई अशरण नहीं है, उनको आत्मा का शरण है। वे आत्मा के अमृत में ऐसे निरंतर हुये उसमें लीन होकर के उन्हें तो आत्मा का ही शरण है। बाहर शुभभाव आते आये तो उन सभी का निषेधे भी आता है। सभी का निषेध करें तो मुनिपना किसके आधार से पालन करेंगे ? कि मुनिपना अपने स्वंय के स्वरूप के आधार से करेंगे। बारम्बार अंतर्मुहूर्त -अंतर्मुहूर्त में स्वरूप में उसके आधार से जाते है, वे मुनिपना पालन कर रहे है। मुनिदशा होती है उससे अधिक शुभभावों में भी यदि रुक जाय तो उनको अप्रमत्तदशा जो न आये तो मुनि की दशा वे लांघ जाते है। और बाहर के कार्यों में कोई गृहस्थ जेसे कार्यों में रुक जाय तो विशेष वे पंचमहाव्रत से बाहर आ जाते है। ऐसी वस्तु मर्यादा छूटकर मुनि की दशा उसके योग्य शुभभाव होते है। गृहस्थों को गृहस्थों के योग्य भाव होते हैं, अणुव्रत ओर सम्यग्दर्शन को सम्यग्दर्शन के योग्य और मुनि को मुनिपने के योग्य होते है ऐसी मर्यादा होती है मुनिदशा की। छठवें-सातवें गुणस्थाने झूलते मुनि उसमें वृद्धि करते आगे जाते है। और किसी को उसी भव में केवलज्ञान होता है और किसी को दूसरे भव में केवलज्ञान होता है। यह मुनि की दशा है।

श्रोता : आत्मा का पूज्यज्ञान इस कारण से होना चाहिये ..... पूज्यज्ञान .....

श्रोता : माताजी ! राजकुमार राज-पाट छोड़कर दीक्षा लेने को चल देते है तो उनको ऐसा कौन सा आधार होगा कि राजपाट छोड़कर ..... अंतर में ऐसा....

पूज्य बहिनश्री : अंतर में ऐसा उसे पुरुषार्थ जागृत हुआ है, वैराग्य आता है। और यह सम्यग्दर्शनपूर्वक है इस प्रकार उनको ऐसा होता है कि बस मुझे आत्मा की साधना करनी है, वैरागी होकर गृहस्थाश्रम छोड़कर निकल पड़ते है। अंतर में भेदज्ञान हुआ है। सम्यग्दर्शन से भी अधिक मुझे आगे बढ़ना है, चारित्रदशा प्रकट करनी है और आधार आत्मा का है और अंदर मन के अंदर तो उसे गुरु का सभी का आश्रय तो होता है लेकिन जंगल में जाते है तो अपने आत्मा के आधार से नीकलते है। शुभभाव बीच में आते है। शुभभाव से होता है ऐसा नहीं लेकिन उनको आश्रय आत्मा का लेकिन होता है, देव-गुरु-शास्त्र का निषेध होता नहीं है। पुनः स्वयं जंगल की ओर चले जाते है। जंगल में अकेले रहकर चारित्रदशा की साधना करते है, किसी को ऐसी भावना आती है कि जंगल में रहे, कोई भगवान के दर्शन करे, कोई समवसरण में जाय, उनको भावना अलग-अलग आती है।

श्रोता : किन्तु मात्र सम्यग्दर्शन पश्चात् ही ऐसी भावना आती है?

पूज्य बहिनश्री : ऐसा नहीं होता है। वह सम्यग्दर्शन पश्चात् की वास्तविक भावना ही चारित्रदशा ही है। प्रथम भावना उग्र हो तो कोई मुनि हो जाय और बाद में सम्यग्दर्शन हो ऐसा भी किसी को बनता है, कोई द्रव्यलिंगी हो, किसीको सम्यग्दर्शन बाद में हो और भावना आकर के नीकल जाय ऐसा भी बने। बाद में तो किसी को ऐसे ही नीकल जाय। लेकिन वास्तविक चारित्रदशा तो सम्यग्दर्शन पश्चात् ही चारित्रदशा कही जाती है।

बोलीये अनुभवऋद्धिधारक भगवती मात की जय हो,

स्वानुभूतिऋद्धि मार्ग प्रकाशक कृपालु कहानगुरुदेव की जय हो.....

\

ऐसा आचार्यदेव कहते हैं। उपयोग अन्तर में लाने को आचार्यदेव कहते हैं, मति–श्रुत का उपयोग, अर्थात् उसका राग छूटे तो उपयोग अन्दर आये न? राग छूटे बिना उपयोग अन्दर आता नहीं।

पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा–सी.डी.–२ B

प्रश्न :–: ..आप समजायेंगे? अथवा सर्वथा पर को नहीं जानता ऐसा कहें तो बराबर है कि नहीं?

समाधान :– छठवी गाथा में कहाँ ऐसा आता है?

प्रश्न :– गुरुदेव के प्रवचन में आता है, पर को जानता नहीं।

समाधान :– और दूसरी गाथा में? प्रवचन में आता है?

प्रश्न :– गुरुदेव की कैसेट है उसमें एक वाक्य आता है कि पर को जानता नहीं। और दूसरी गाथा में अमृतचंद्राचार्य की टीका है उसमें लिखा है कि पर को जानता नहीं ऐसा यदि मानेगा तो तुझे मिथ्यात्व है।

समाधान :– सब अपेक्षा हैं। पर को जानता नहीं यानी पर में एकत्व नहीं होता। पर को जानता नहीं यानी कि स्वयं का जो ज्ञानस्वभाव है वह ज्ञान ज्ञानरूप परिणमित होता है। पर में एकत्व होता नहीं यानी कि वह पर को जानता नहीं, लेकिन अपना ज्ञान परिणमित होता है, ऐसा कहना चाहते हैं। और पर को नहीं जानता (ऐसा मानेगा तो) मिथ्यात्व है। ज्ञान स्वभाव खुद का ही है तो ज्ञान सर्व को जानता है। ज्ञान ऐसा नहीं है कि पर को नहीं जाने। ज्ञान तो लोकालोक को जानता है। इसलिये ज्ञान जानता नहीं ऐसा माने कि.... छह द्रव्य जगत में है, द्रव्य–गुण–पर्याय, दूसरे अनंत द्रव्य हैं सर्व को ज्ञान जानता तो है। इसलिये नहीं जानता है ऐसा सर्वथा माने तो–तो मिथ्यात्व है। ज्ञान का स्वभाव है जानना।

नहीं जानता है अर्थात् पर में एकत्व होता नहीं। स्वयं ज्ञानरूप ही रहता है। ज्ञान, ज्ञान का स्वभाव है जानना। इसलिये सहज जानता है। ज्ञान स्वयं सहज स्वभावरूप परिणमता है, ज्ञानरूप। वह ज्ञान ज्ञान को जानता है, ऐसा वहाँ कहना है। अर्थात् ज्ञान ज्ञेय को जानता नहीं ऐसा उसका अर्थ नहीं है। उसकी अपेक्षा समझनी चाहिये।

प्रश्न :– छठवीं गाथा में किस अपेक्षासे वहाँ कहना चाहते हैं? पर को जानता नहीं है तो वहाँ कौनसी अपेक्षा है?

समाधान :– अपेक्षा यह है कि ज्ञान ज्ञानरूप परिणमता है। ज्ञान ज्ञान को जानता है,

परज्ञेय उसमें आता नहीं। ज्ञान उसमें एकत्वबुद्धि होकर उसमें घूसकर, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय में घूसकर ज्ञान नहीं जानता। ज्ञान भिन्न रहकर जानता है, ज्ञान ज्ञान में रहकर जानता है, ज्ञान ज्ञानरूप परिणमित होकर जानता है। ऐसे। दूसरे ज्ञेय में एकत्व होकर, उसमें घूसकर नहीं जानता। ज्ञान का स्वयं का स्वभाव ही है कि स्वयं स्वयं को और अन्य को जाने। अर्थात् ज्ञान ज्ञान को जानता है, ऐसा उसका अर्थ है। सर्वथा ज्ञेय को जानता ही नहीं, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। सर्वथा नहीं जानता है ऐसा उसका अर्थ नहीं है।

प्रश्न :- राग जीव की पर्याय में होता है और समयसार में राग को पुद्गल कहते हैं। जीव में चेतनगुण है और अचेतन गुण नहीं है तो अजीव किस हिसाबसे राग को कहते हैं?

समाधान :- राग है वह अपना स्वभाव नहीं है। अपना स्वभाव तो वीतराग है। राग उसका स्वभाव नहीं है। कर्म के निमित्तसे होता है इसलिये उस राग को अजीव कहा। लेकिन खुद की पर्याय में होता है इसलिये उसे चेतन कहा। चैतन्य की पर्याय में होता है। अपने पुरुषार्थ की मंदतासे होता है। इसलिये वह जीव की विभाविक पर्याय है। लेकिन वह अपना स्वभाव नहीं है। कर्म के निमित्तसे होता है इसलिये उसे अजीव कहा। उसकी दोनों अपेक्षा समझनी चाहिये। अजीव यानी अजीव ही नहीं है, तो राग कहाँ होता है? राग अजीव थोड़े ही करता है। राग अपनी पर्याय में होता है। लेकिन अपनी पर्याय में होता है परंतु वह विभाव है, स्वयं का स्वभाव नहीं है। स्वभाव नहीं है इसलिये उसे अजीव कहा। तू तेरे द्रव्य स्वभाव को देख तो उसमें कोई राग नहीं है। तो यह राग कहाँसे आया? कि कर्म के निमित्तसे हुआ है इसलिये राग कर्म की ओर का है। इसलिये उस अपेक्षासे वह अजीव है ऐसा कहा। राग कुछ जानता नहीं, जाननेवाला तो आत्मा है। कर्म के निमित्तसे होता है इसलिये वह अजीव है। इसप्रकार अपेक्षासे अजीव कहा है।

उसमें भी अपेक्षासे पर को नहीं जानता ऐसा कहा है। एकत्वबुद्धि करके नहीं जानता। उसमें राग और एकत्वबुद्धि करता है इसलिये वह ज्ञेय में जाता नहीं, भिन्न रहकर जानता है। ज्ञान ज्ञानरूप परिणमित होकर जानता है। उसकी अपेक्षा समझनी चाहिये। सर्वथा नहीं समझ लेना। किस अपेक्षासे कहा है (उसे समझना)। राग को सर्वथा अजीव कहो तो करना क्या रहा? कुछ रहा नहीं। मोक्षमार्ग, पुरुषार्थ करना, मोक्षमार्ग प्रगट करना, दर्शन-ज्ञान-चारित्र रत्नत्रय प्रगट करना, राग छोड़कर वीतराग स्वभाव प्रगट करना (यह नहीं रहता)। राग अजीव होता तो करना क्या रहा? तो-तो स्वयं को वीतरागता का वेदन होना चाहिये। वीतरागता का वेदन तो होता नहीं। वीतराग तो हो नहीं गया। उसका वेदन कहाँ होता है? राग अपना स्वभाव नहीं है। उससे भिन्न होओ। तेरा स्वभाव ज्ञायक है, ऐसा कहना है। तू तेरे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कर। आत्मा का स्वभाव भिन्न है। तू ज्ञायक है और यह राग तेरा स्वभाव नहीं है। इसप्रकार भिन्न होओ। यदि राग की पर्याय ही नहीं हो ऐसा तो है नहीं, तो-तो वीतरागदशा

का वेदन होना चाहिये। सर्वथा अजीव और जड़ हो तो। सर्वथा पर को जानता नहीं हो, ज्ञान जाने ही नहीं तो लोकालोक का ज्ञान नहीं होगा। सर्वज्ञ स्वभाव केवलज्ञान जो लोकालोक को जानता है वह जानेगा ही नहीं। जाने ही नहीं, स्वयं को ही जाने तो ये सब जो भगवान की वाणी में आता है कि जगत में छह द्रव्य हैं, नौ तत्त्व हैं, ऐसी बात आती है। अनन्त द्रव्य हैं, जीव अननन्त, पुद्गल अनन्तान्त, स्वर्ग, नर्क इत्यादि अनेक प्रकार की बात आती है, वह सब भगवान की वाणी में आता है। वह सब ज्ञान ही नहीं हो। पर को जानता नहीं हो तो केवलज्ञान ही नहीं रहे, सर्वज्ञता ही नहीं रहे, कुछ रहता नहीं। सर्वथा नहीं जानता हो तो। केवलज्ञान नहीं रहता। स्वयं स्वयं को ही जाने, दूसरे द्रव्य को कोई जाने ही नहीं।

जगत में सूक्ष्म परमाणु है, उसके द्रव्य–गुण–पर्याय की सूक्ष्मता भगवान प्रत्यक्ष जानते हैं। भूतकाल की बात, वर्तमान की, भविष्य की बात वह सब कोई जाने ही नहीं। यदि ज्ञेय को जानता नहीं हो तो। कोई पूर्व की बात जाने नहीं, स्वयं कुछ जाने ही नहीं। यदि सर्वथा नहीं जानता हो तो।

प्रश्न :– १८ गाथा में कहते हैं कि आबालगोपाल सर्व को सदा काल आत्मा ही जानने में आता है तो हम को क्यों जानने में नहीं आता?

समाधान :– आबालगोपाल सर्व जानते हैं वह जानना अलग है और प्रगटरूपसे जानना वह अलग है। प्रगटरूपसे भेदज्ञान होकर जो जानना वह (अलग है)। ज्ञायक को पहिचानकर जाने। आबालगोपाल जानते हैं यानी कि ज्ञानस्वभाव है वह ज्ञानरूप ही रहा है। आबालगोपाल को ज्ञानस्वभाव ज्ञानरूप ही है और जड़ जड़रूप ही है। वह खुद जड़ नहीं हो गया। आबालगोपाल को ज्ञान ज्ञानरूप ही रहा है। ज्ञान ज्ञानरूप है उसे पहिचान तो प्रगट होगा। आबालगोपाल सर्व को ज्ञान ज्ञानरूप ही रहा है, अन्यरूप हुआ ही नहीं। भगवान आत्मा जानने में आ रहा है। जानने में आ रहा है अर्थात् ज्ञान ज्ञानरूप ही रहा है। उस रूप ही उसकी परिणति है। लेकिन उसका वेदन कहाँ है? प्रगट कर तो वेदन हो। जड़ नहीं हुआ है। ज्ञान ज्ञानरूपसे आबालगोपाल सर्व को है। ज्ञायक ज्ञायकरूप ही रहा है, उस रूप ही जानने में आता है। जानने में आता है वह प्रगट नहीं जानने में आता–वेदन में नहीं आ रहा है।

आचार्यदेव तो करुणा करके कहते हैं कि आबालगोपाल सर्व को जानने में आ रहा है, तू क्यों नहीं जानता है? ऐसा कहते हैं। वे तो करुणा करते हैं कि आबालगोपाल सर्व को वह भगवान आत्मा जानने में आ रहा है यानी उस रूप ही रहा है, तू देख तो सही, ऐसा कहते हैं। उसका तूझे वेदन हो रहा है ऐसा नहीं कहते हैं। तू उसका वेदन कर, ऐसा कहते हैं।

प्रश्न :– समयसार में कहते हैं कि द्रव्य और पर्याय दोनों का क्षेत्र भिन्न है, प्रदेश भिन्न है। तो किस अपेक्षासे ऐसा कहते हैं कि द्रव्य और पर्याय का क्षेत्र–प्रदेश भिन्न है?

समाधान :- बिलकूल प्रदेश भिन्न होते नहीं। ऐसा हो तो पर्याय भिन्न और द्रव्य भिन्न हो जायेगा। पर्याय भिन्न हो जायेगी और द्रव्य भिन्न हो जायेगा। द्रव्य की पर्याय है, पर्याय कोई बिना आधार लटकती नहीं। बिना द्रव्य की पर्याय किसके आधार होगी? पर्याय मात्र कोई भिन्न वस्तु है कि जगत में मात्र पर्याय हो? ऐसा तो कुछ है नहीं। द्रव्य के आधारसे पर्याय होती है। पर्याय बिना का कोई द्रव्य होता नहीं। लेकिन जब द्रव्य पर दृष्टि करता है कि मैं तो चैतन्यद्रव्य ही हूँ, इसप्रकार उसकी परिणति को गौण करके मैं द्रव्य शाश्वत हूँ ऐसे दृष्टि करता है, इसलिये पर्याय का जो लक्ष्य है वह गौण हो जाता है। यानी कि पर्याय में दृष्टि की मुख्यता होनेसे पर्याय भिन्न है ऐसा दृष्टि की अपेक्षासे कहते हैं। मैं तो शाश्वत द्रव्य हूँ। इसमें कोई पर्याय दिखती नहीं। दृष्टि के विषय में दिखाई नहीं देती इसलिये है ही नहीं ऐसा कहते हैं। उसका क्षेत्र भिन्न है ऐसा कहते हैं। वह कहाँ दिखाई देती है? इसलिये नहीं है ऐसा कहते हैं। और बिना पर्याय का द्रव्य कभी होता ही नहीं। उसकी अपेक्षा समझनी चाहिये। पर्याय बिना का द्रव्य हो तो वेदन किसको होगा? दर्शन, ज्ञान, चारित्र सब पर्याय ही प्रगट होती है। सम्यग्दर्शन होता है वह पर्याय है, ज्ञान होता है वह पर्याय है-सम्यग्ज्ञान, चारित्र होता है वह पर्याय है। उसका वेदन किसको होगा? बिलकूल भिन्न हो, सर्वथा प्रदेश भिन्न हो तो वेदन किसको होगा ? जिसका वेदन नहीं है, जो बिलकूल भिन्न है उसे प्रगट करने का फिर कोई प्रयोजन नहीं रहता है। उसकी अपेक्षा मुख्यता, गौणता को समझना चाहिये कि किस अपेक्षासे है, किस अपक्षासे नहीं है। दृष्टि के विषय के ज़ोर में मुझे पर्याय कहीं भी दिखाई नहीं देती, अन्दर द्रव्य में देखता हूँ तो। इसलिये पर्याय का क्षेत्र भिन्न है ऐसा कह देता है।

प्रश्न :- दृष्टि की अपेक्षासे तो पर्याय भिन्न है न, माताजी?

समाधान :- पर्याय भिन्न है अर्थात् वहाँ वस्तुभेद नहीं समझना, वस्तुभेद नहीं समझना। वस्तु भिन्न नहीं समझनी, उसकी गौणता समझनी। एक इन्सान अपने सामने देखे कि मैं ही मुझे दिखाई देता हूँ, दूसरे लोग हो तो कहे दूसरे है ही कहाँ? मैं ही हूँ, अन्य कोई है नहीं। इस घर के अन्दर मैं ही दिखाई देता हूँ और यह सब मैं ही हूँ, दूसरा कुछ है ही कहाँ? इसप्रकार स्वयं पर नज़र गई इसलिये दूसरा कुछ है ही नहीं ऐसा कहे तो क्या और कोई नहीं है? द्रव्य पर दृष्टि गई तो उसने पर्याय को गौण की। यहाँ तो मनुष्य भिन्न ही है, लेकिन यहाँ तो अंश है वह द्रव्य का अंश है।

प्रश्न :- वेदन पर्याय का है तो वेदन द्रव्य का नहीं है, ऐसा?

समाधान :- वेदन भले ही पर्याय का हो लेकिन पर्याय और द्रव्य एक ही है, इसलिये द्रव्य का भी वेदन कह सकते हैं। आत्मा की अनुभूति हुई ऐसा कहते हैं, पर्याय की अनुभूति हुई ऐसा नहीं। ऐसे कहते हैं। वीतरागता की अनुभूति हुई। वीतरागस्वरूप आत्मा है, सम्यग्दर्शनरूप आत्मा है, ज्ञानरूप आत्मा है ऐसा कहते हैं। चारित्र की पर्यायरूप आत्मा है ऐसा कहते

हैं। वह कोई भिन्न है? वेदन यानी वेदन करनेवाला भिन्न और द्रव्य भिन्न रह गया, ऐसा कुछ है? अनादिथी वेदन नहीं है। पर्याय प्रगट हो यानी वेदन होता है लेकिन वेदन करनेवाली पर्याय भिन्न और द्रव्य भिन्न रह गया। राग की पर्याय हो तो राग की पर्याय हुई, लेकिन रागरूप आत्मा परिणमित होता है ऐसा भी कहते हैं। राग आत्माने किया, क्रोध आत्माने किया ऐसा भी कहते हैं। राग पर्यायने किया, क्रोध पर्यायने किया, ऐसे स्वयं उसका आश्रय है, आत्मा कोई भिन्न लटकता नहीं। जैसे पर्याय लटकती नहीं, वैसे पर्यायसे बिलकूल अलग नहीं रहता, द्रव्य बिलकूल भिन्न नहीं रह जाता।

प्रश्न :- जैसे सुख-दुःख का वेदन होता है वैसे ज्ञान का वेदन (होता है)?

समाधान :- जैसे सुख-दुःख का वेदन होता है वैसे ज्ञान का भी वेदन होता है। ज्ञान उसकी अपक्षासे, ज्ञान ज्ञानरूपसे जाननेरूप उसका वेदन है। ज्ञान का वेदन प्रगट हो तब होता है। अनादिसे उसको कोई ज्ञान का वेदन नहीं है। ज्ञायक ज्ञायकरूप परिणमित हुआ। ज्ञायक ज्ञातारूप उसका वेदन है। प्रगट हो तब। बिना प्रगट हुए उसका कहाँ वेदन है? ज्ञाता स्वयं ज्ञातारूप परिणमे तो उसे ज्ञाता ही हूँ, वह वेदन अलग है। सुख का वेदन वह तो राग का है, सुख-दुःख का (वेदन) है वह तो राग का है। आचार्यदेवने करुणा करके कहा कि आबालगोपाल सभी भगवानरूप परिणमित हो रहे हैं, तो सब तर्क उठते हैं।

प्रश्न :- शास्त्र में ऐसे कथन आते हैं, इसलिये..

समाधान :- आबालगोपाल सभी ज्ञानरूप हो ही रहे हैं, तू देखे, तू स्वयं ही है। देख तो सही, ऐसा कहते हैं। आबालगोपाल हो ही रहे हैं तो क्यों अनुभव में नहीं आता? लेकिन आचार्यदेव कहते हैं कि तू ज्ञानस्वरूप हो रहा है। तू तेरे पास है, तू क्यों नहीं देखता? ऐसा कहते हैं, उनका कहने का आशय यह है।

..अनुभव में आ रहा है यानी प्रगट अनुभूति हो रही है ऐसा नहीं कहना है। तूझे प्रगट नहीं है, लेकिन अनुभव में आ रहा है। इसलिये तेरे लिये आसान है, देख तो सही, ऐसा कहते हैं। आसान है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की एकता की अनुभूति .. उसही प्रकार आबालगोपाल को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की एकता अनुभव में आ रही है।

समाधान :- वह अनुभूति कही वह दूसरी अपेक्षासे कही है। ऐसा आत्मा तूझे दर्शाया, तू देख, तू स्वयं ही है।

प्रश्न :- सिद्धो वर्ण समाम्नाय।

समाधान :- हाँ, सिद्धो वर्ण समाम्नाय। उमराला में बचपन में वह (प्रथम शब्द सुना था)। भगवान वीतराग हुए, राग-द्वेष छूटकर भगवान हुए। वह भगवान बाहर में, आत्मा भगवान अन्दर है। उस भगवान को पहिचाने तो भगवान हो सकता है, पहचाने बिना नहीं हो सकता।

प्रश्न :- माताजी! समवसरण कैसा होता है?

समाधान :- समवसरण में भगवान बिराजते हैं। जो भगवान आत्मा में स्थिर हो गये हों, अन्दर में उनका शरीर भिन्न होता है, उनका आत्मा भिन्न होता है। भगवान बिराजते हों समवसरण में, उनकी वाणी छूटती हो, समवसरण में देव आते हों, मनुष्य आते हों, सभा भरी हो, उसमें रत्नों के गढ़ होते हैं। अनेक प्रकारसे समवसरण अन्दर देवोंने रचना की है, समवसरण में मन्दिर होते हैं, भगवान की भक्ति करने देव, मनुष्य सब आते हैं। भगवान समवसरण में बिराजते हैं।

प्रश्न :- माताजी! भगवान विहार करके दूसरे स्थान में जाये तो वही मनुष्य, तिर्यंच, देव जाते हैं या वहाँ दूसरे आते हैं?

समाधान :- दूसरे गाँव में दूसरे होते हैं, लेकिन जितने साथ में रहनेवाले होते हैं वह सब जाते हैं। जैसे मुनि, गणधर आदि सब साथ में जाते हैं। जिस गाँव के मनुष्य हैं वह सब जाते हैं ऐसा नहीं है, दूसरे गाँव में दूसरे मनुष्य होते हैं। देव जाते हैं, देव जाते हैं। कुछ देव तो साथ ही होते हैं भगवान विहार करे तब। कुछ देव जो विहार में साथ में होते हैं वह सब देव साथ में होते हैं। मुनि, गणधर आदि सब साथ होते हैं। तिर्यंच का नियम नहीं है। उस गाँव के वहाँ होते हैं, दूसरे गाँव में दूसरे होते हैं।

प्रश्न :- ..समवसरण बिखर जाये तब वहाँ के जो मनुष्य और तिर्यंच वहाँ के होते हैं वह सब नीचे ऊतर जाते होंगे, समवसरण बिखर जाये तब? बीस हजार सीढ़ियाँ..

समाधान :- भगवान का ऐसा अतिशय है कि सब एकदम नीचे ऊतर जाते हैं, एकदम चड़ जाते हैं। बुढ़े भी चड़ जाते हैं, बच्चे भी चढ़ जाते हैं, सब एकदम चढ़ जाते हैं और एकदम ऊतर जाते हैं। एकदम बिखर नहीं जाता, सब एकदम ऊतर जाते हैं, वैसे बिखरता है। देव ऐसा नहीं करते हैं।

प्रश्न :- समवसरण एक स्थान में कितने दिन तक रहता है?

समाधान :- उस गाँव के जितने पुण्य होते हैं उतने समय रहता है, उसका नियम नहीं है। शास्त्र में ऐसा आता है कि चार महिने वर्षाऋतु में रहते हैं। जिस गाँव के जितने पुण्य होते हैं उतना समय रहता है। वह सब कुछ निश्चित नहीं होता। भगवान का ऐसा उदय। उनको विकल्प नहीं है। सहज ही गाँव के पुण्य होते हैं तबतक भगवान बिराजते हैं, बाद में विहार करते हैं। एक महिना भी रहे, लेकिन कितने दिन रहे उसका कोई नियम नहीं है।

प्रश्न :- भगवान को चतुरमुख होते हैं या एक मुख है और चारों ओर दिखता है?

समाधान :- भगवान का मुख एक होता है और अतिशयसे चार मुख दिखते हैं। मुख चार नहीं होते। मुख एक होता है लेकिन अतिशयसे चारों ओर दिखता है। सबको ऐसा दिखता है कि भगवान मुझे दिखते हैं। चारों ओरसे भगवान दिखते हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों ओरसे भगवान दिखते हैं। उनका अतिशय ऐसा है। भगवान का समवसरण होता

है, वहाँ सब देव आते हैं, मनुष्य आते हैं, राजा आते हैं। भगवान का पूरा समवसरण भरा हुआ रहता है। जब–जब ध्वनि छूटे तब पूरी सभा हाजिर होती है। रत्न के मन्दिर, रत्न के वृक्ष, सब रत्न का होता है। देवों को आश्चर्य होता है कि यह समवसरण की रचना कैसे हो गई! भगवान के पुण्यसे इसकी रचना होती है। ऐसी शक्ति हमारे में नहीं थी, यह कैसे रचना हो गई! इसप्रकार देवों को आश्चर्य होता है, ऐसे समवसरण की रचना हो जाती है।

प्रश्न :– रचना करनेवाले को आश्चर्य होता है, ऐसी रचना हो जाती है।

समाधान :– ऐसी रचना हो जाती है। ऐसा भगवान का अतिशय है। मन्दिर होते हैं, खाई, भूमि होती है, वृक्ष की भूमि होती है, अनेक प्रकार की भूमि होती है, ध्वजा की भूमि इत्यादि अनेक प्रकार की भूमि, वह सब भूमि और किले को पारकर जाये तब भगवान की गंधकूटी आती है, (जिसमें) भगवान बिराजते हैं।

प्रश्न :– भगवान को केवलज्ञान होते ही बीस हजार हाथ ऊपर चले जाये और बाद में समवसरण की रचना होती है?

समाधान :– हाँ, तुरन्त समवसरण की रचना हो जाती है। भगवान ऊपर चले जाते हैं। देव आकर समवसरण की रचना करते हैं वह तुरन्त रचते हैं। देवों की शक्तिसे तुरन्त रचना करते हैं। भगवान को जहाँ केवलज्ञान हुआ, ज़मीनसे ऊपर चले जाते हैं।

प्रश्न :– सभी केवली के लिये ऐसा है?

समाधान :– केवलज्ञानी सब ऊपर जाते हैं। समवसरण का नक्की नहीं होता। ऊपर जाते हैं। तीर्थंकर तो ऊपर जाते हैं, लेकिन ऊपर सब जाते हैं। देवों को समवसरण की रचना करने में देर नहीं लगती।

प्रश्न :– महावीर भगवान का समवसरण तो भरत में रचा गया था।

समाधान :– हाँ, भरतक्षेत्र में रचना हुई थी, राजगृही नगरी में। इस भरतक्षेत्र में ही महावीर भगवान के समवसरण की रचना राजगृही नगरी में हुई थी। श्रेणिक राजा जहाँ राज करते थे। पहला राजगृही नगरी में रचना हुई, विपुलाचल पर्वत पर। फिर तो भगवानने सब जगह विहार किया।

प्रश्न :– माताजी! अन्य केवली भगवान को तो कुछ सुनने का, समझने का भाव होता नहीं तो फिर वे भी क्यों समवसरण में जाते हैं?

समाधान :– जिन्हें कुछ श्रवण करना नहीं है, समझने का तो भी वह भगवान का समवसरण होता है वहाँ बिराजते हैं। सब केवलज्ञानी भगवान नहीं, लेकिन कुछ तो बिराजते हैं। उनके बिराजमान होने का स्थान समवसरण में बिराजते हैं। बिराजे तो सही न। बिराजते हैं, कितनों को ध्वनि छूटती है, कितनों को ध्वनि का उदय हो तो दूसरे स्थान में जाते हैं। जिनको ध्वनि का उदय नहीं हो तो केवली भगवान कहाँ बिराजते हैं? भगवान के समवसरण

में। सुनना नहीं है, कुछ नहीं है और बिराजते हैं भगवान के समवसरण में। ऐसा भगवान का वैभव है। भगवान के समवसरण में केवलज्ञानी होते हैं, मुनि होते हैं, वह सब भगवान के समवसरण की तीर्थंकर की विभूती है। भगवान के समवसरण में केवलज्ञानी बिराजते हैं, केवलज्ञान प्रप्त करके। जिस केवलज्ञानी को ध्वनि नहीं होती। उदय होता है वह तो दूसरे गाँव जाते हैं वहाँ गंधकूटी की रचना होती है। सब रचना होती है, पीठिका इत्यादि, सभा बैठ सके ऐसी रचना होती है। केवलज्ञानी की भी ध्वनि छूटती है, दूसरे गाँव में जाते हैं वहाँ।

प्रश्न :- भगवान विहार करे तब पादकमल की रचना होती है वह स्वयं ही भगवान के अतिशयसे रचना हो जाती है? भगवान विहार करे तब एक के बाद एक पादकमल नैसर्गिकरूपसे रचना हो जाती है?

समाधान :- देव रचना करते हैं। कमल की रचना देव करते हैं। भगवान जहाँ कदम रखते हैं वहाँ सुवर्ण कमल की रचना देव करते हैं। महावीर भगवान के समवसरण रचना हुई, ध्वनि छूटती नहीं थी। उसप्रकार का था। ध्वनि छूटने का काल था और गौतमस्वामी आये, सब का मेल हो गया। उपादान-निमित्त का।

प्रश्न :- वाणी का योग तीर्थंकर के सिवाय अन्य केवली को भी होता है।

समाधान :- हाँ, होता है, वाणी का योग होता है। होता है, कितनों को नहीं होता है, कितनों को वाणी का योग होता है। शास्त्र में आता है, जहाँ तीर्थंकर भगवान नहीं बिराजते हैं, वहाँ कोई केवलज्ञानी भी बिराजते हैं और उनकी भी वाणी छूटती है। उपदेश की ध्वनि छूटती है।

प्रश्न :- वीतराग होने के बाद राग तो है नहीं, फिर भी ऐसी करुणा..

समाधान :- उसप्रकार का पुण्यबंधन हुआ है कि केवलज्ञान होने के बाद ध्वनि छूटे।

प्रश्न :- गौतमस्वामी अन्दर पधारने के बाद सम्यग्दर्शन हुआ या बाहरसे ही?

समाधान :- वह कुछ नहीं है। मानस्तंभ देखकर आश्चर्यचकित हुए हैं। फिर सम्यग्दर्शन कब प्राप्त हुआ, वह सब अन्दर आने के बाद हुआ है। किस भूमि में और कहाँ तक आये वह कुछ आता नहीं। बाकी मानस्तंभ देखकर आश्चर्यचकित हुआ हैं। वहाँ-से उनकी शुरूआत हो गई है, उनकी परिणति पलटने की शुरूआत वहाँ-से हो गई है। वहाँ जाते हैं तो सब हो गया। सम्यग्दर्शन हो गया, मुनिदशा हो गई, चार ज्ञान हो गये, सब परिणति वहाँ जाते ही पलट जाती है। भगवान के समक्ष गये तो एक क्षण में सब पलट गया। भगवान के दर्शन किये तबसे सब पलट गया। शुरूआत हो गई यहाँ मानस्तंभ के पास।

प्रश्न :- अन्तर पुरुषार्थ ऐसा शुरू हो गया।

समाधान :- अन्तर पुरुषार्थ की परिणति। अन्दर आश्चर्य लग गया। मैं यह सब मानता था वह जूठा है। मैंने तो माना था कि मेरे जैसा कोई नहीं है। मानो मैं तो सर्वज्ञ हूँ,

ऐसी मान्यता हो गई थी। यह तो गलत है। आश्चर्य (हुआ)। अन्दर की इतनी पात्रता है कि उनको आश्चर्य लग गया कि यह है कौन?! ऐसे कैसे महापुरुष हैं! यह भगवान कौन है! ऐसा आश्चर्य लगा। अन्दर की मान्यता थी वह सब बात छूट गई। अन्दरसे एकदम पात्रता जागृत हो गई। परिणति एकदम पलट गई, एकदम पलट गई। सभी आग्रह एकदम छूट गये। मान्यता सब अन्यमत की वेदान्त की थी वह एकदम पलट गई। एकदम पलटकर एकदम सब प्रगट हो गया। आत्मा ऐसा चैतन्य है न, ऐसी पात्रता प्रगट हो गई। एकदम पुरुषार्थ शुरू हो गया।

प्रश्न :- जातिस्मरण हुआ था?

समाधान :- कोई कारण नहीं, भगवान के दर्शनसे सब हो गया है। निमित्त भगवान के दर्शन है और अन्तर में स्वयं का उपादान है।

ज्ञान कल्याणक
ता. २४-१-२०२४

मंगलाचरण

चत्तारि मंगलं, अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलीपण्णत्तो धम्मो मंगलं

चत्तारि लोगुत्तमा, अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा,

केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

चत्तारि शरणं पव्वज्जामि, अरहंते शरणं पव्वज्जामि, सिद्धे शरणं पव्वज्जामि,

साहू शरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं शरणं पव्वज्जामि ।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी ते तरे,

सकल कर्मनो आणे अंत, मोक्ष तणा सुख लहे अनंत,

भाव धरीने जे गुण गाय, ते जीव तरीने मुक्ति जाय,

संसारमांहि शरण चार, अवर शरण न कोई, जे नर-नारी आदरे, तेने अक्षय अविचल पद होय ।

अंगूठे अमृत वसे, लब्धि तणा भंडार, ज्यां गुरु गौतमने समरिये तो सदाय मन वांछित फल दातार।

श्रोता : पुनः एक प्रश्न है कि सम्यग्दर्शन में जिस प्रकार भेदज्ञान की धारा वर्तती है तो क्या उस मार्ग पर ही केवलज्ञान होता है और केवलज्ञान का स्वरूप क्या है? उसे समझाने की कृपा करें।

पूज्य बहिनश्री : जे मार्ग सम्यग्दृष्टि का है जो भेदज्ञान प्रकट हुआ वह ही मार्ग अंत तक वह ही है। प्रथम जिज्ञासा में जो भावना की, प्रयत्न किया, पुरुषार्थ करके सम्यग्दर्शन प्रकट हुआ कि जो उसे अनादिकाल का दुर्लभ था उसने पुरुषार्थ करके प्राप्त किया। स्वभाव तो सुलभ है किन्तु उसे अनादिकाल से एकत्वबुद्धि मानकर दुर्लभ हो गया था, उसने उसे पुरुषार्थ की भावना और पुरुषार्थ ज्ञायक की ओर का बारम्बार अभ्यास करके और देव-गुरु-शास्त्र के नियम कोई अपूर्व निमित्त से... उस देव-गुरु-शास्त्र का निमित्त तो कोई अपूर्व है। उसको स्वयं ने पुरुषार्थ करके जो प्रकट किया जो सम्यग्दर्शन और जो ज्ञायक को ग्रहण किया, वह ही मार्ग है, अंत तक वह ही मार्ग है। पश्चात् मार्ग सहज व सुगम हो जाता है ऐसा दुरुह नहीं है। ज्ञायक जो ग्रहण हुआ वह ज्ञायक ग्रहण हुआ उसमें उसकी लीनता की, लीनता की कमी है। लीनता अल्प है। शेष जो ज्ञायक ग्रहण किया वह ही ज्ञायक, वह ज्ञायक जो सम्यग्दर्शन के लिये वह ज्ञायक, मुनिदशा में है वह ही

ज्ञायक, पूर्णदशा में वह ज्ञायक हैं। ज्ञायक दूसरा नहीं है। ज्ञायक ही ग्रहण करना, ज्ञायक की परिणति, जो दृष्टि में आयी वह ही ज्ञायक, उसका वह है किन्तु उसमें उसकी परिणति उसमें लीनता की कमी है उस लीनता की वृद्धि करता रहता है। शुद्धात्म प्रवर्ते लक्षण जो शुद्धात्मा की परिणति प्रकट करना वह ही मुक्ति का मार्ग है।

जिस शुद्धात्मा को ग्रहण किया, सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में हो वह लीनता और चैतन्य में स्थिर होने पर जो मुनिओं ठहर (स्थित हो) जाते है वे उतना स्थिर रह सकते नहीं है। सम्यग्दृष्टि अनेक प्रकार के विकल्प, अनेक प्रकार की प्रवृत्तिओं में स्थित होते है और मार्ग तो एक ही है यह मार्ग वह मुनिदशा जो मार्ग सम्यग्दर्शन में प्रकट हुआ वह ही मार्ग मुनिदशा में है। मुनिओं बारम्बार स्वरूप में लीन हो जाते है। जो ज्ञायक ग्रहण किया, जो चैतन्य का घर ग्रहण किया उस घर के अंदर बारम्बार समा (ठहर) जाते है समय लेते है और सम्यग्दृष्टि ज्ञायक को ग्रहण करी बारम्बार उसमें ठहरते नहीं है वे तो बाहर ही स्थित रहते हैं। और मुनिओं बारम्बार स्वरूप की गहराई में चले जाते है, जम जाते है।

अंतर्मुहूर्त..अंतर्मुहूर्त में स्वरूप में लीन हो जाते है, उनको बारम्बार स्वरूप में बाहर आना पड़े उन्हें मुश्किल होता है। एक अंतर्मुहूर्त में बाहर आकर पुनः अंदर चाले जाते है, ऐसी दशा उनको प्रकट होती है। मार्ग तो एक ही है, दूसरा कोई मार्ग नहीं है। केवलज्ञान भी उसी मार्ग पर ही प्रकट होता है। मार्ग सरल है फिर मार्ग उसे सहज और सुगम हो गया है।

श्रमणों , जिनों, तीर्थंकरों आ रीते सेवी मार्गने

सिद्धी वर्या नमुं तेमने निर्वाणना ते मार्गने।

बस इसी मार्ग से ही मोक्ष, अंत तक यह एक ही मार्ग है। अन्य कोई दूसरा मार्ग नहीं है। और केवलज्ञान होता है यह केवलज्ञान की तो क्या बात करना। जैसा चैतन्यद्रव्य अनादि अनंत शाश्वत है। ऐसा चैतन्य द्रव्य परिणतिरूप प्रकट हो गया है। चैतन्य द्रव्य जो अनादि अनंत शाश्वत जिनके अनंतगुण सभी जो परिणमनरूप शक्ति में थे उनके जितने गुणो सभी शक्ति में थे, वे सब प्रकट हो गये। सभी खिल गये अर्थात् जैसा चैतन्य द्रव्य था वैसी ही उसकी सभी पर्यायें खील उठी। उसका ज्ञान केवल-केवलज्ञान का क्या एक समय की भीतर लोकालोक और स्वयं के स्वरूप में वे ज्ञानसागर स्वयं, स्वयं के स्वरूप में डूब गये है। ज्ञायक में डूब गया, आनंद सागर में जल मग्न हो गया, अनंत गुणों खिल उठे। ज्ञान भी वह ज्ञान भी यह ज्ञान स्वयं स्वरूप की ओर दिशा उसकी स्वरूप की ओर हो गई पूर्णदशा और सम्यग्दृष्टि तो किसी तरह सन्मुख ज्ञायक की ओर वे तो पूर्ण स्वरूप सन्मुख ही डूब गये डूब गये। पुनः सहजरूप क्षयोपशमज्ञान का – ज्ञान का क्षयोपशम जो ज्ञान क्षयोपशमरूप था, अंतर्मुहूर्त में कार्य करता यह केवलज्ञान उसका ज्ञान एक समय में बिना सोचे समझे ज्ञेय को जानने की इच्छा बिना, उसकी इच्छा भी नहीं है, इच्छा बिना एक समय के अंदर ज्ञान का ऐसा सामर्थ्य है, ज्ञान का ऐसा सर्वज्ञ स्वभाव, आत्मा का एक समय की अंदर संपूर्ण लोकालोक को अनंता द्रव्यों को, भूतकाल, वर्तमान, भविष्य ऐसे अनंत अनंत द्रव्यों के गुण-पर्यायों को उसके पृथक-पृथक अनंतकाल के सभी एक समय में, उसके ज्ञान में आ जाता है तदपि अणु-रेणुवत् उनको बोजा नहीं होता है। मानों अणु कैसा पडा हो ज्ञान में उसके समान। अपने आप में डूबे रहे है। ऐसा स्व-परप्रकाशक ज्ञान उनको खील उठता है। उस केवलज्ञान की उनको इच्छा भी नहीं है। वह स्व-परप्रकाशक ज्ञान का सम्यक् उसका पूर्व में नाश होता नहीं है, शक्ति में होता है, वह सभी प्रकट होता है।

श्रोता : माताजी ! समवसरण कैसा होता है ?

पूज्य बहिनश्री : समवसरण में भगवान विराजमान होते है, जो भगवान आत्मा में अंदर ठहर गये हो उनका शरीर पृथक होता है, उनका आत्मा पृथक होता है। भगवान समवसरण में विराजते हो और उनकी वाणी खिरती हो जिस समवसरण में देवों का आगमन हो, मनुष्यों आते हो और सभा भरी होती है। उसमें रत्नों के गढ होते है, अनेक विशिष्टतायुक्त समवसरण, जिनकी रचना देवोष्ठित होती है, समवसरण में मंदिरों होते हैं, भगवान की भक्ति करने देवों, मनुष्यों सभी आते है, ऐसे समवसरण में भगवान विराजते है।

श्रोता : माताजी ! भगवान विहार करके दूसरे स्थान में जाय तो वह ही मनुष्यों, तिर्यंचों, देवों पुनः दूसरी जगह जाते है कि कि अन्य विदेश (दूसरे गाँव) के दूसरे आते है ?

पूज्य बहिनश्री : दूसरे गाँव में दूसरे होते है किन्तु जो साथ में रहेनेवाले होते है वे सभी साथ में जाते है। जैसे कि मुनिओं, गणधरों ऐसे वे सब साथ में जाते है, जिस गाँव के मनुष्य हो वे सभी जाते है, ऐसा नहीं है। अन्य गाँव से भी दूसरे मनुष्य आते है, देवो भी जाते है, लेकिन कुछ देव तो साथ में ही रहते है। भगवान विहार करे तब देव उनके साथ में होते हैं। उन देवों के साथ, जैसे कि मुनिवरों, गणधरों आदि साथ में होते है, तो पहलेवाले ही तिर्यंच साथ रहते है ऐसा कोई नियम नहीं है। वह तो उस गाँव में उस गाँव के अन्य दूसरे गाँव के भी होते हैं।

श्रोता : समवसरण विलिन हो जाय तो सभी देव ... . तुरंत नीचे उतर जाते होंगे? समवसरण विलिन हो जाय तो; २०,००० सीधा पगथिया .....

पूज्य बहिनश्री : भगवान का ऐसा अतिशय है कि सभी नीचे तुरंत उतर जाते है, तुरंत चढ़ जाते है। वृद्ध चढ़ जाते, छोटे भी चढ़ जाते है और सभी तुरंत (एकदम) चढ़ जाते है और तुरंत उतर जाते है। कुछ तुरंत एकदम विलिन नहीं हो जाता है, सभी उतर जाते है तब विलिन हो जाता है। इस प्रकार देवों कुछ करते नहीं है।

श्रोता : एक जगह समवसरण कितने दिन रहता है ?

पूज्य बहिनश्री : उस गाँव के पुण्य हो उतना समय रहता है, उसका नियम नहीं है। शास्त्र में कुछ आता है कि चार महिने चतुर्थ ऐसा चातुर्मास (चोमासा – वर्षाकाल) में भगवान रहते है वह भी अलग-अलग। बारह महिना जिस गाँव के पुण्य हो उतना समय रहता है ऐसा कोई निश्चित नहीं है। भगवान को ऐसा उदय व उनको विकल्प नहीं है, सहज गाँव के पुण्य हो तब तक भगवान विराजते है पश्चात् विहार करते है। महिना रहे, कितने दिन रहे ऐसा कोई नियम नहीं है।

श्रोता : क्या भगवान को चौमुखी चार मुख होते है कि एक मुख होता है और सभी ओर दिखता है ?

पूज्य बहिनश्री : भगवान का मुख एक ही होता अतिशय से चार मुख दिखाई देते हैं। मुख चार नहीं होते हैं। मुख्यरूप से मुख एक ही होता है, लेकिन अतिशय से चारों ओर दिखाई देता है। सभी को ऐसा लगता है कि हमें भगवान दिखाई देते है, चारों बाजु से भगवान दृश्यमान होते हैं। पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण चारों ओर से दिखाई दे, ऐसा भगवान का अतिशय होता है। भगवान का समवसरण होता है, वहाँ पर देवों आते हैं, मनुष्यों आते हैं, राजाओं आते हैं, सभी आते है भगवान का समवसरण संपूर्ण भरा हुआ होता है। जब-जब ध्वनि छूटती है तब सभी समय पूर्ण सभा हाजिर होती है।

भगवान के समवसरण में रत्नों के मंदिरों, रत्नों के वृक्षों, सभी रत्नों का होता है। देवों को आश्चर्य होता है कि यह समवसरण की रचना किस प्रकार हुई ? यह भगवान के पुण्य से यह रचना होती है। यह शक्ति हमारे में नहीं है तो किस प्रकार रचना हो गई, ऐसा देवों को आश्चर्य हो जाय ऐसा समवसरण रचना हो जाती है।

श्रोता : इतने सारे आश्चर्य हो ऐसी रचना हो जाती है।

पूज्य बहिनश्री : ऐसी रचना हो जाती है, ऐसा भगवान का अतिशय है। प्रथम मंदिर भूमि होती है पश्चात् खाई भूमि होती है, वृक्षों की भूमि अनेक प्रकार की भूमियाँ, ध्वजा की भूमि, सभी अनेक प्रकार की भूमि वे सभी भूमि को, गढ को लांघकर जाय, तब भगवान की गंधकूटी आती है। जहाँ भगवान विराजमान होते है।

श्रोता : क्या भगवान को केवलज्ञान होने के पश्चात तुरंत पांच हजार हाथ ऊँचे चले जाते है बाद में समवसरण रचना होती है ?

पूज्य बहिनश्री : तुरंत समवसरण रचना हो जाती है। भगवान ऊँचे चले जाते है, देवों आकर समवसरण रचना करते हैं तुरंत रचना हो जाती है। कुछ देवों की तो शक्ति इतनी कि तुरंत रचना कर देते हैं। भगवान को केवलज्ञान हुआ, जमीन से तुरंत (पांच हजार हाथ) उपर चले जाते है।

श्रोता : क्या सभी केवलीओं के लिऐ ऐसा है ?

पूज्य बहिनश्री : केवलज्ञानी सभी उँचे जाते है। समवसरण का निश्चित नहीं होता है। उपर जाते है, कितने ऊंचे जाते है, तीर्थंकरों तो ऊंचे जाते हैं लेकिन उपर तो सभी केवली जाते हैं। देवों को समवसरण की रचना में देर लगती नहीं है।

पूज्य बहिनश्री : ऐसी रचना हो जाती है, ऐसा भगवान का अतिशय है। प्रथम मंदिर भूमि होती है पश्चात् खाई भूमि होती है, वृक्षों की भूमि अनेक प्रकार की भूमियाँ, ध्वजा की भूमि, सभी अनेक प्रकार की भूमि वे सभी भूमि को, गढ को लांघकर जाय, तब भगवान की गंधकूटी आती है। जहाँ भगवान विराजमान होते है।

श्रोता : क्या भगवान को केवलज्ञान होने के पश्चात तुरंत पांच हजार हाथ ऊँचे चले जाते है बाद में समवसरण रचना होती है ?

पूज्य बहिनश्री : तुरंत समवसरण रचना हो जाती है। भगवान ऊँचे चले जाते है, देवों आकर समवसरण रचना करते हैं तुरंत रचना हो जाती है। कुछ देवों की तो शक्ति इतनी कि तुरंत रचना कर देते हैं। भगवान को केवलज्ञान हुआ, जमीन से तुरंत (पांच हजार हाथ) उपर चले जाते है।

श्रोता : क्या सभी केवलीओं के लिऐ ऐसा है ?

पूज्य बहिनश्री : केवलज्ञानी सभी उँचे जाते है। समवसरण का निश्चित नहीं होता है। उपर जाते है, कितने ऊंचे जाते है, तीर्थंकरों तो ऊंचे जाते हैं लेकिन उपर तो सभी केवली जाते हैं। देवों को समवसरण की रचना में देर लगती नहीं है। वे तो उस ध्वनिनो उदय जहाँ न हो तो वे कहाँ आसीनस्थ होते हैं केवली भगवान, कि भगवान के समवसरण में। सुनना कुछ नहीं है? आसीन होते भगवान के समवसरण में। (और तीर्थंकर भगवान को) भगवान का वैभव है उन भगवान के

समवसरण में केवलज्ञानी होते हैं, मुनिओं होते हैं, यह सभी भगवान का समवसरण और उनके तीर्थंकर भगवान की विभूति से सभी भगवान के समवसरण में केवलज्ञानी, केवलज्ञान को प्राप्त करके विराजते हैं। उन केवलज्ञानी को ध्वनि का उदय है तो दूसरे गाँव जाय वहाँ गंधकूटि रचना होती है। सभी रचना पीठिकादि और कुछ सभा, सभा बैठ सके इस प्रकार की सभामंडप की रचना वहाँ होती है। और दूसरे गाँव जाय वहाँ पर भी केवलज्ञानी को ध्वनि छूटती है।

श्रोता : क्या भगवान जहाँ विहार करते है वहाँ उनके चरण जहाँ रखते है वहाँ कमल की रचना हो जाती है, तो वह स्वयमेव कि भगवान के अतिशय से रचना हो जाती है। भगवान जब विहार करते है तब कमल रखते है कि वे कमल की कुदरती रचना हो जाती है ....?

पूज्य बहिनश्री : देवों रचना करते हैं। कमल देवों रचते है। भगवान चरण जहाँ रखते है कि वहाँ पर सुवर्ण कमल की देवों रचना करते हैं। महावीर भगवान को समवसरण की रचना तो हुई लेकिन ध्वनि खिरती नहीं थी। इस प्रकार का ध्वनि छूटने का काल था और गौतमस्वामी आये और सब कुछ मेल हो गया। यह उपादान और निमित्त का ...

श्रोता : वाणी का योग कोई तीर्थंकर के अतिरिक्त अन्य किसी को कोई भव में होता है ?

पूज्य बहिनश्री : होता है, वाणी का योग होता है, किसी को नहीं होता है, किसी को वाणी का उदय होता है, शास्त्र में आता है, तीर्थंकर भगवान जहाँ आसीनस्थ न हो वहाँ कोई केवलज्ञानी भी आसीन होते है और उनकी भी वाणी खिरती है यह उपदेश की ध्वनि, उपदेश की ध्वनि खिरती है।

श्रोता : वीतराग होने के बाद राग तो है अभी तक वीतरागी वे पर में ...

पूज्य बहिनश्री : ऐसा...ऐसा। बंध पुण्य का बंध इस प्रकार का हुआ है कि केवलज्ञानी होने के बाद ध्वनि निकलती है।

श्रोता : गौतमस्वामी अंदर पधारे पश्चात् सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए कि बाहर से ?

पूज्य बहिनश्री : ऐसा कुछ नहीं है। मानस्तंभ देखर आश्चर्यचकित हो गये बाद में सम्यग्दर्शन कब प्राप्त हुआ ? अंदर आने के बाद सब कुछ हुआ है। कौन सी भूमि में और कहाँ तक आये, ऐसा कोई वर्णन नहीं है, बाकी मानस्तंभ देखकर आश्चर्य को प्राप्त हुए है। वहाँ से उनका प्रारम्भ हो गया है। उनकी परिणति पलटने की शुरुआत वहाँ से हो गई है। वे पलटते वहाँ जाते है वहाँ सब कुछ हो गया, सम्यग्दर्शन हो गया, मुनिदशा हो गई, चार ज्ञान प्राप्त हो गया। सब परिणति इतनी देर में वहाँ जाते है वहाँ पर सब पलट गई। वहाँ भगवान के पास समवसरण में गये। एक क्षण में सब कुछ पलट गया। भगवान के दर्शन किये तब से सब पलट गया। प्रथम प्रारंभ यहाँ से हुआ मानस्तंभ देखने से ।

श्रोता : अंदर पुरुषार्थ इतना हो गया।

पूज्य बहिनश्री : अंतर का पुरुषार्थ की परिणति अंदर से आश्चर्य हो गया। यह मैं मानता था वह सब मिथ्या है। मेंने तो माना था कि मेरे समान दूसरा कोई नहीं है। मानों मैं तो कोई सर्वज्ञ हूँ ऐसा मानने में आ गया था। यह तो मिथ्या है, मेरे में तो आश्चर्य अंदर की इतनी पात्रता है कि उनको अंदर से आश्चर्य हो गया। यह कौन है? ऐसा हो गया। यह तो किस

प्रकार के महापुरुष ? यह कौन भगवान है ? ऐसा हो गया। ऐसा आश्चर्य हो गया। वह विपरीत मान्यता मेरी स्वयं की सभी बात भीतर से छूट गई। और भीतर से एकदम पात्रता जागृत हो गई है। परिणति बिल्कुल पलट गई है। बिलकुल पलट गई है। सभी आग्रह बिलकुल छूट गये। मान्यता सभी जो अन्यमत की वेदांत की थी, एकदम पलट गई। एकदम पलटकर एकदम सब कुछ एकदम प्रकट हो गया है। यह आत्मा को ऐसी चैतन्य की उसकी पात्रता एकदम हो गई। पूर्णरूप से पुरुषार्थ हुआ, हो गया।

श्रोता : जातिस्मरण से .....

पूज्य बहिनश्री : कोई कारण नहीं है। भगवान के दर्शन से सब कुछ हो गया। निमित्त भगवान के दर्शन है, और अंतर में स्वयं का उपादान है।

प्रशममूर्ति भगवती मात की जय हो,

सम्यक्त्वमूर्ति परम भगवती मात की मंगल वाणी की जय हो।

अनंतानंत उपकारी कहानगुरुदेव की जय हो।

ट्रेक-१४९

मुमुक्षु :- उसे अंतरसे बैठना चाहिये। उस प्रकारसे कुछ आपका जवाब था। बुद्धिसे नहीं, अपितु अंतरसे। इन दोनोंमें क्या अंतर है?

समाधान :- बुद्धिसे विचार करके निर्णय किया वह तो बुद्धिसे (हुआ)। अंतरमेंसे प्रगट करे। जो स्वभाव है, उस स्वभावमें पहुँचकर ग्रहण होना चाहिये कि यह चैतन्य सो मैं हूँ। विचार किया कि यह चैतन्य मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ, ऐसा विचारसे निर्णय किया वह विचारसे निर्णय नहीं, अंतरमेंसे होना चाहिये। अंतरमेंसे कि जो अन्दरमें अपना अस्तित्व है वह अस्तित्व ग्रहण होना चाहिये कि यह चैतन्यका अस्तित्व सो मैं, यह बाहरकी जो परिणति होती है वह मेरा मूल स्वभाव नहीं है, वह तो पर्यायें हैं। उसका अस्तित्व ग्रहण होना चाहिये। विचारसे निर्णय करे। पहले आता है, परन्तु अंतरमेंसे दृष्टि प्रगट होनी चाहिये।

मुमुक्षु :- जैसे रागका स्वामीत्व है कि यह मेरा है, मैं हूँ। ऐसे उसे अपने चेतनत्वका स्वामीत्व, मेरापना, अहंपना प्रगट होना चाहिये। उसे अंतरमेंसे प्रगट हुआ (ऐसा कहते हैं)?

समाधान :- मैं यही हूँ, यह मैं नहीं हूँ। स्वमें स्वबुद्धि (करे) कि मैं यही हूँ। मैं उसका स्वामी, वह विकल्प हुआ। लेकिन मैं जो चैतन्य है वही मैं हूँ। उतनी बुद्धि उसमें तदाकार-तद्रूप दृष्टि उस रूप परिणमित हो जाय। जो एकत्वकी परिणति चल रही है, वह भिन्न होकर यह मैं हूँ, यह मैं नहीं हूँ। ऐसी अंतरमेंसे उस प्रकारकी परिणति प्रगट हो जाय।

मुमुक्षु :- उसका उपयोग..

समाधान :- उसका उपयोग बाहर जाता है, परन्तु अन्दर दृष्टि प्रगट होनी चाहिये, उस प्रकारकी।

मुमुक्षु :- राग हो ऐसा कोई गुण जीवमें नहीं है। राग हो ऐसा जीवमें कोई गुण नहीं है। और ऐसे सीधा ले तो चारित्रगुणकी पर्याय है, उसमें राग चारित्रगुणकी विपरीतताके कारण होता है, वहाँ कहनेका भावार्थ क्या है?

समाधान :- आत्माके मूल स्वभावमें राग हो ऐसा उसका स्वभाव नहीं है। उसमें

अमुक प्रकारकी योग्यता है, वैभाविक योग्यता है (तो) चैतन्यमें विभाव परिणमन होता है। उसके मूल स्वभावमें कहीं राग नहीं होता है। स्फटिक स्वभावसे निर्मल है, वैसे स्वभावसे तो स्वयं निर्मल ही है। उसके मूल स्वभावमें अन्दर प्रवेश (नहीं हुआ है)। स्फटिकमें मूल स्वभावमें लाल-कालेका प्रवेश नहीं होता है। वैसे उसका मूल स्वभाव, उसमें राग हो ऐसा उसका स्वभाव नहीं है। स्वभावमें उसका प्रवेश नहीं होता। उसकी परिणतिमें ऐसा हो जाता है। उस प्रकारकी उसमें योग्यता है, पर्यायमें हो वैसी। वैभाविक शक्ति है, उसमें ऐसी योग्यता है। वह होता है। वह नहीं हो तो उस जातका वेदन, आकुलता कुछ नहीं होता। उस जातकी विभावपर्याय होती है। लेकिन मूल स्वभावमें नहीं है। मूल स्वभावमें जाकर देखे तो, जैसे स्वभावसे पानी निर्मल है, स्फटिक निर्मल है, वैसे उसका स्वभाव निर्मल है। निर्मलता पर दृष्टि करे तो निर्मल ही है। इसलिये निर्मलको ख्यालमें लेना और ये सब जो विभावकी पर्याय है, स्वयं अपनी ओर आये तो उसकी विभाव परिणति छूटकर स्वभाव परिणति हो। फिर अल्प अस्थिरता रहती है, वह भी पुरुषार्थसे क्रम-क्रमसे छूट जाती है।

सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व। चैतन्यकी ओर परिणति गयी तो सर्व गुणोंका अंश स्वभावकी ओर परिणति प्रगट (होती है)। इस ओर दिशा है तो सब विभावपर्याय होती है। पूरा चक्कर दृष्टि इस ओर मुड़ी तो सब ऐसे मुड़ जाता है। फिर अल्प अस्थिरता रहती है, उसकी भी धीरे-धीरे शुद्धि होती जाती है। चारित्रकी निर्मलता (होती है)। एक तत्त्वको ग्रहण करे तो उसमें सब आ जाता है। ज्ञान, आनन्द आदि सब उसमें प्रगट होता है। एक उसकी दृष्टि बदले तो।

मुमुक्षु :- .. पुरुषार्थ क्यों उठता नहीं है?

समाधान :- सबका एक ही प्रश्न आता है। क्यों नहीं उठता है? अपना ही कारण है, किसीका कोई कारण नहीं है। स्वयंकी रुचिकी क्षति है और अपनी मन्दता है। गुरुदेव कहते थे, किसीका कारण नहीं है। नहीं कर्म रोकते, नहीं और कोई रोकता। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। अपनी रुचि बाहर विभावमें रुकी है, इसलिये रुक गया है। स्वयं अपनी ओर जाय तो स्वतंत्र है। उसे कोई रोकता नहीं है। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। स्वयं विभावमें जानेवाला स्वतंत्र (है), स्वभावमें आनेवाला स्वयं स्वतंत्र है। अपनी स्वतंत्रतासे स्वयं अपनेमें आ सकता है। स्वयं स्वयंको पहचान सकता है।

स्वयं अपना स्वभाव पहचानकर स्वयंकी ओर जाना है। बाहर अटका है। स्वयंकी ओर जाना। मैं चैतन्यदेव चैतन्यस्वभावसे भरा हुआ, ज्ञायकतासे भरा हुआ आत्मा हूँ। अपनी ओर जाना। सब विभाव आकुलतारूप है। स्वभाव शान्ति और आनन्दसे भरा है। उस ओर जाना, उस ओर परिणतिको मोड़ना आदि सब अपने हाथमें है। भेदज्ञान

करना, स्वानुभूति करना, सब मुक्तिका मार्ग गुरुदेवने प्रकाशित किया है। आनन्द स्वभावमें भरा है। ज्ञान, आनन्द सब आत्मामें है, बाहर कहीं नहीं है।

मुमुक्षु :- .. विकल्पका ज़ोर बढ़ जाता है। स्वभाव हाथमें आता नहीं है, विकल्प उत्पन्न हो जाता है। स्वभावको स्वयं प्रयत्न करके ग्रहण करना। प्रज्ञासे भिन्न करना और प्रज्ञासे ग्रहण करना, (ऐसा) शास्त्रमें आता है। और गुरुदेव भी ऐसा ही कहते थे। विकल्पका ज़ोर बढ़े तो उसके सामने अपना ज़ोर बढाना। चैतन्य परिणतिका ज़ोर बढ़े तो वह टूटे। स्वयं अपने स्वभावको ग्रहण करना और विभावसे भिन्न करना। प्रज्ञासे ग्रहण करना, प्रज्ञासे भिन्न करना अपने हाथकी बात है। विकल्पका ज़ोर बढ़े तो उसके सामने नहीं देखकर स्वयं अपने स्वभावका ज़ोर बढ़ाना। बारंबार उसीका अभ्यास करना। उसीका अभ्यास करना, उसमें थकना नहीं। उसीकी ओर अभ्यास करते रहना।

... सबका सार एक है-मैं एक शुद्ध ममत्वहीन ज्ञान-दर्शनसे भरा आत्मा हूँ। मैं एक शुद्ध आत्मा हूँ। अनादि अनन्त शाश्वत हूँ। चैतन्य ज्योति है। ये सब तो जड़ है, ये सब दिखाई देता है वह। चैतन्यकी ज्योति अनादिअनन्त शाश्वत है। प्रत्यक्ष ज्ञात हो ऐसा है, कहीं अपरोक्ष नहीं है। स्वयं प्रत्यक्ष है। परोक्ष नहीं है, परन्तु प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष ज्योति है, अनादि अनन्त है। नित्य उदयरूप है। वह गुप्त नहीं है, नित्य प्रगट ही है। उदित आत्मा है। उसे अनुभव नहीं होता है, अनुभव हो तो उदय कहा जाय। परन्तु स्वभाव उदयरूप है, नित्य उदयरूप है। प्रत्यक्ष चैतन्यकी ज्योति है। चैतन्यस्वभाव है, ज्ञानघन स्वभाववान है। उसका स्वभाव ज्ञानसे भरा ऐसा चैतन्य प्रत्यक्ष अनुभवमें आये ऐसा है। ऐसा एक स्वरूप आत्मा है। अखण्ड ज्योति है। उसमें खण्ड नहीं पड़ता। ऐसा आत्मा है। उसे ग्रहण करने जैसा है।

बाकी सब अनादिसे परिणमन हो रहा है, वह सब परिणमन परके साथ एकत्वयुक्त है। चैतन्य एक स्वरूप आत्मा, शुद्ध चैतन्यज्योति उसे ग्रहण करने जैसा है। अनादिअनन्त शाश्वत चैतन्य है। प्रत्यक्ष है। दिखायी नहीं देता है, फिर भी प्रत्यक्ष है। स्वयं प्रत्यक्ष है, गुप्त नहीं है। परोक्ष तो अपेक्षासे कहनेमें आता है। परोक्ष नहीं है। केवलज्ञानकी अपेक्षासे कहा है। उसका वेदन तो स्वानुभूतिमें प्रत्यक्ष होता है। प्रत्यक्ष ज्योति है। ये बाहरकी ज्योति नहीं, ये तो चैतन्यकी ज्योत ऐसा आत्मा है। एक स्वरूप आत्मा शुद्धात्मा, उसे ग्रहण करने जैसा है। उसे ग्रहण करे और उसकी महिमा आये तो सब विभाव परिणतिका रस टूट जाय, चैतन्यकी महिमा आये तो। ऐसा एक शुद्धात्मा है।

एक शुद्धात्मा है। सब प्रक्रियासे पार। उसमें कर्ता, क्रिया, करण, संप्रदान, अपादान आदि प्रक्रिया .... स्वभावरूप है। किसी भी प्रकारका भेद नहीं है। ऐसा शुद्ध है। किसी भी प्रकारका उसमें कर्ता, परका कर नहीं सकता, परकी क्रिया कर नहीं सकता।

उसे कुछ दे सके, उसमेंसे कुछ ले सके, उसका वह आधार नहीं है। ऐसा आत्मा है। ऐसी सब प्रक्रियासे पार आत्मा ऐसा चैतन्यतत्त्व है। उस तत्त्वको ग्रहण करने जैसा है।

.... अनादि कालसे कर रहा है, फिर भी ममत्वहीन हूँ। परका ममत्व, स्वामीत्वबुद्धि कर रहा है, तो भी कहते हैं, मैं ममत्वहीन हूँ। उसका स्वामीत्व पुद्गलका है, स्वयंको नहीं है। फिर भी स्वामीत्व मान तो लेता है। तो भी कहते हैं, मैं उससे स्वामीत्व रहित, उससे भिन्न चैतन्यतत्त्व है। विभावका विश्वरूपपना। विभाव तो पूरे विश्वमें व्याप्त, ऐसा विभाव है। परन्तु मैं उसका स्वामी नहीं हूँ।

... अपने स्वभावमें शान्ति और आनन्द भरा है। वह तो बाहरका संयोग है। देव-गुरु-शास्त्र आत्माको प्राप्त करनेमें निमित्त हैं। देव-गुरु-शास्त्र, जिन्होंने आत्माकी साधना करके पूर्णता प्रगट की, उसकी भावना बीचमें आये बिना नहीं रहती। साधकोंको शुभभावमें भावना आती ही है कि देव-गुरु-शास्त्र मुझे समीप हो, ऐसी भावना आती है। परन्तु वह हेयबुद्धिसे आती है। हेय होने पर भी उसे भावना होती है कि देव-गुरु-शास्त्रकी समीपता हो। वह होनेपर भी भावना आती है।

गुरुदेवकी वाणी जोरदार थी कि सेवक ऐसा ही कहे कि, प्रभु! मैं आपके कारण तिरा। ऐसा कहे। परन्तु उपादान अपना है। भावना ऐसी (आती है)। निमित्त पर आरोप करके (कहता है कि), प्रभु! आपने मुझे तारा। शुभभावमें तो ऐसा आता ही है। आचार्यों भी ऐसा कहते हैं, सब ऐसा ही कहते हैं। ... वह तो उसका स्वभाव नहीं है, अपना स्वभाव नहीं है ऐसा जाने। परन्तु शुभभावमें ऐसा आये कि प्रभु! आप मुझे तारिये, ऐसा आये।

मुमुक्षु :- देव-गुरु-शास्त्रके प्रति बहुमान आये बिना नहीं रहता।

समाधान :- रहता ही नहीं। जिसे ज्ञायकओरकी परिणति हो, उसमें ऐसा बहुमान आता ही है। आचार्योंको भी ऐसा बहुमान आता है। आचार्य भी शास्त्र लिखे तब जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार करते हैं।

मुमुक्षु :- सभी वस्तुएँ क्रमबद्ध हैं तो पुरुषार्थकी महत्ता नहीं रही।

समाधान :- क्रमबद्ध, पुरुषार्थपूर्वक क्रमबद्ध होता है। जिसमें पुरुषार्थ समाविष्ट है। क्रमबद्ध होनेके बावजूद उसमें पुरुषार्थ साथमें होता है। उसका जो पुरुषार्थ करे, जिसे पुरुषार्थकी भावना होती है, उसीका क्रमबद्ध सुलटा होता है। जिसे पुरुषार्थ नहीं करना है, प्रमाद करना है, उसका क्रमबद्ध भी उलटा होता है। उसे संसारका क्रमबद्ध होता है। जिसे पुरुषार्थकी भावना हो, उसीका क्रमबद्ध मोक्षकी ओर होता है। जिसे पुरुषार्थ नहीं होता, उसे क्रमबद्ध सुलटा नहीं होता। पुरुषार्थके साथ सम्बन्ध है।

... क्रमबद्धके साथ सब कारण साथमें होते हैं। पुरुषार्थ, स्वभाव आदि सब साथमें होते हैं। जिसका पुरुषार्थ सुलटा, उसका क्रमबद्ध सुलटा होता है। पुरुषार्थपूर्वकका क्रमबद्ध समझना।

... महिमा गाये। गुरुदेव गाते थे। सब आचार्य गाते हैं। उसका स्वभाव .... आत्मामें अनन्त शक्ति भरी है। आत्मामें ज्ञान अनन्त, आत्मामें आनन्द अनन्त। आत्मा अद्भुत तत्त्व है। ये बाहरका जो दिखाई देता है वह सब तुच्छ है। वह कुछ आत्माको सुखरूप नहीं है। इसलिये उसका विचार करके आत्माका स्वभाव पीछाने तो महिमा आये। देवलोकके देव भी आश्चर्यभूत नहीं हैं। देवलोकका सुख भी आश्चर्यभूत नहीं है। देवोंको भी भगवान जिनेन्द्र देवकी महिमा आती है। देव-गुरु-शास्त्रकी महिमा आती है। जिन्होंने आत्मस्वरूपको प्रगट किया, ऐसे देव-गुरु-शास्त्रकी साधना करे, उसकी महिमा, जो उन्होंने प्रगट किया। इसलिये करने जैसा है वैसा आत्मा है। इसलिये आत्माकी महिमा करनी। आत्माका स्वभाव ऐसा है। जैसा भगवानका आत्मा है, वैसा अपना आत्मा है। इसलिये उसका-आत्माका स्वभाव पहिचानना। जो जिनेन्द्र देव-गुरु कहते हैं, उसे अन्दर पहिचानना कि आत्मा ऐसा ही है। आत्मामें कोई अद्भूतता भरी है, आत्मा कोई आश्चर्यकारी तत्त्व है। ये सब दिखाई देता है, वह अलग है और अंतरमें आत्मा कोई अलग है। उसकी महिमा लानी।

... विशेषता नहीं है। जीवनकी विशेषता आत्मामें कुछ प्रगट हो तो जीवनकी विशेषत है, तो मनुष्यजीवनकी सफलता है। बाकी ये सब संसार तो पुण्यके कारण चलता रहता है। वह प्रयत्न करे तो भी अपनी इच्छानुसार नहीं होता है। इसलिये अंतरमेंसे-आत्मामेंसे कुछ प्रगट हो, कुछ नवीनता आत्माका स्वभाव। तो वही जीवनका कर्तव्य है। इसलिये उसकी रुचि, महिमा, उसका विचार, उसका घोलन, वांचन आदि सब उसका करने जैसा है।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

(ऐसा नहीं है)। एक आत्माको पीछाने (उसमें) सब आ जाता है। और सबको पीछाने, आत्माको पीछाने नहीं तो कुछ जाना नहीं। एक आत्माको पीछाने उसमें सब आ जाता है। आत्माको जाना उसने सब जाना और आत्माको नहीं जाना तो ग्यारह अंगका ज्ञान हुआ तो भी कुछ नहीं हुआ।

मुमुक्षु :- आत्मा सुखी तो नहीं हुआ।

समाधान :- नहीं हुआ। आगमज्ञान (करे), परन्तु उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि ज्यादा खूब जाने तो मुक्तिका मार्ग हो सकता है। अमुक प्रयोजनभूत जाने तो भी आत्माका स्वभाव प्रगट होता है। आगमज्ञान होता है। भगवानकी वाणी, भगवानने क्या कहा है, शास्त्रमें क्या आता है, आगमज्ञान आता है। विशेष जाने तो अच्छा है, थोड़ा जाने तो भी हो सकता है।

शिवभूति मुनि कुछ जानते नहीं थे। एक शब्दका ज्ञान भी भूल जाते थे। मारुष, मातुष। राग-द्वेष नहीं करनेका गुरुने कहा तो वह भी भूल गये। मासतुष हो गया। उसका भाव समझ लिया। औरत दाल और छीलका अलग करती थी। ऐसा मेरे गुरुने कहा कि आत्मा भिन्न है और यह विभाव भिन्न है। ऐसा भेदज्ञान करके अंतरमें ऊतर गये। मूल प्रयोजनभूत तत्त्वको जाने।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

मोक्ष कल्याणक
ता. २५-१-२०२४

मंगलाचरण

चत्तारि मंगलं, अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलीपण्णत्तो धम्मो मंगलं

चत्तारि लोगुत्तमा, अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा,

केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

चत्तारि शरणं पव्वज्जामि, अरहंते शरणं पव्वज्जामि, सिद्धे शरणं पव्वज्जामि,

साहू शरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं शरणं पव्वज्जामि ।

चार शरण, चार मंगल, चार उत्तम करे जे, भवसागरथी ते तरे,

सकल कर्मनो आणे अंत, मोक्ष तणा सुख लहे अनंत,

भाव धरीने जे गुण गाय, ते जीव तरीने मुक्ति जाय,

संसारमांहि शरण चार, अवर शरण न कोई, जे नर-नारी आदरे, तेने अक्षय अविचल पद होय ।

अंगूठे अमृत वसे, लब्धि तणा भंडार, ज्यां गुरु गौतमने समरिये तो सदाय मन वांछित फल दातार।

श्रोता : वारंवार कहते हो कि करना तो तुझे ही है लेकिन जब भी करे तभी ही तुझे करना है। तब दूसरी ओर ऐसा भी आता है कि पंचपरमेष्ठी भगवंतों की कृपा का फल मोक्ष है। मेरे मोक्षमंडप में पंचपरमेष्ठी भगवंत पधारो सभी को में साथ रखता हूँ तो यह दोनों के बीच संधि किस प्रकार से है?

पूज्य बहिनश्री : पुरुषार्थ तो स्वयं को ही करने का है। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है गुरुदेवश्री ने सभी स्वतंत्रता का वर्णन किया है। प्रत्येक द्रव्य के गुण-पर्याय सभी स्वतंत्र है और अंदर आत्मा में जो स्वानुभूति आनंद प्रकट होता है वह भी स्वयं से ही होता है फिर भी जो अनादिकाल से जो मोक्ष का मार्ग जो प्रकट हुआ नहीं है, स्वानुभूति नहीं प्रकट हुई है, उसमें अनादिकाल से प्रथम कोई देव अथवा गुरु उसका वचन जीव को मिले भीतर देशनालब्धि होती है ऐसा निमित्त-उपादान का सम्बन्ध है। यह निमित्त और उपादान, उपादान स्वयं का तैयार हो तब निमित्त उसके साथ में होता ही है तब देशनालब्धि होती है। अर्थात् उस कृपा का फल उसे कुछ देव-गुरु की कृपा का फल है जो मुक्ति का मार्ग भीतर स्वानुभूति

प्रकट होती है उसमें गुरुदेव की और जिनेन्द्रदेव की कृपा का फल है। ऐसा साधक को आये बिना रहता नहीं है कि मैं मुक्ति के मार्ग पर जहाँ जा रहा हँ वह जाता हूँ स्वयं से, तदपि आचार्यदेव कहते है कि प्रवचनसार में कि मैं जाता हूँ। मैं मोक्षमंडप में मैं जो चारित्रदशा प्रकट करने जाता हूँ, सम्यग्दर्शन से लेकर चारित्रदशा स्वयं ही जाती है। मैं जाता हूँ, मैं स्वयं से, मैं स्वयं अपने पुरुषार्थ से जाता हूँ। लेकिन देव-गुरु-शास्त्र को साथ में रखता हूँ, उसकी कृपा से, महापुरुषों (वडील) की कृपा से हम साधना कर रहे है। हम तो अनादिकाल से अनजान हम महापुरुषों (वडील) को साथ रखकर, मैं करता हूँ स्वयं से, लेकिन आपको साथ में रखता हूँ, आप हमारी साधना में पधारीये हम जो दीक्षा के मार्ग पर जा रहे है, उसमें आप पधारीये मैं सभी का आदर करता हूँ। सभी का हमें आदर है ऐसी महिमा करता हूँ। सभी तो वंदन करता हूँ। मैं आपको साथ में रखता हूँ। मैं जा रहा हूँ पुरुषार्थ करके मेरे चैतन्य की परिणति प्रकट करने के लिये। चैतन्य अनादि अनंत शुद्ध है लेकिन मैं चैतन्य की परिणति प्रकट करने जाता हूँ, उसमें मैं आप सभी को साथ में रखता हूँ। मेरे शुभभाव में आप सभी साथ में रहो और मैं आपको अंत तक साथ में ही रखता हूँ।

मैं महापुरुषों (वडील) के साथे, महापुरुषों (वडील) की कृपा का फल है, यह हम मुक्ति के मार्ग पर जाते है महापुरुषों (वडील) की कृपा की, जिन्हों ने साधना प्रकट की, जिन्हों ने पूर्णता प्रकट की और साधना प्रकट करके ऐसे जो महापुरुष है – उनको मैं साथ में रखता हूँ। यह निमित्त-उपादान का ऐसा सम्बन्ध है जो करता है स्वयं से लेकिन उसमें देव-गुरु-शास्त्र; साधकों को शुभभाव साथ आये बिना रहता नहीं है। आगे जाता है तो उसके ध्यान के अवलंबन में भी श्रुत का चिंतवन उसको बुद्धिपूर्वक होता है; किन्तु होने का है निर्विकल्पदशा, लेकिन वह बीच में आये बिना रहता नहीं है। निर्विकल्पदशा प्रकट हो, तभी प्रथम उसे शुभ का आलंबन होता है पश्चात् छूटी जाता है लेकिन वह साथ में आये बिना रहते नहीं है। क्योंकि वे शुभभाव और यह तो शुभभाव है किन्तु उससे छूटकर अंतर में जाता है तदपि करता है स्वयं से, लेकिन जिन्होंने प्रकट किया उसके उपर आदर, सत्कार और उसे साथ रखे बिना साधकों को ऐसी परिणति होती है और साथ में ऐसी भावना आये बिना रहती नहीं है।

श्रोता : अर्थात् स्वयं का पुरुषार्थ और महापुरुषों (वडील)का आदर।

पूज्य बहिनश्री : महापुरुषों (वडील) को साथ रखता है। (श्रोता : साथ में रखता है)

श्रोता : हे पूज्य भगवती माता ! एक प्रश्न है। मैं ही मोक्ष का धाम और मैं ही मोक्ष के परिणाम से, सम्यग्दर्शन का विषयभूत भगवान शून्य है तो मुक्त पर्याय से जो शून्य है; उसका आश्रय लेने से मुक्त पर्याय प्रकट होती है, वह विरोध जेसा लगता है। तो उस सम्बन्धित स्पष्टता करने की कृपा किजीयेगा।

पूज्य बहिनश्री : बंध-मोक्ष के परिणाम मूल बंध-मोक्ष के कारण ऐसी सभी पर्यायें हैं, उस पर्याय से वस्तु एवं वस्तु स्वरूप और उस पर्याय पृथक है, यह अपेक्षाएँ है और उसका आश्रय पर्याय एक अंश है और द्रव्य अंशी है। यह अंशी उपर आश्रय... आश्रय करने से (मुक्ति का) अंश प्रकट होता है। लेकिन वह अंश-अंशी का भेद है, वह भी ऐसा सर्वथा भेद नहीं है कि ऐसा सर्वथा भेद कि दो द्रव्यों का भेद हो, ऐसा अत्यंत भेद नहीं है। अंश-अंशी का भेद है और वह द्रव्य पर दृष्टि करें तो ही वह पर्याय प्रकट होती है। जो सम्यग्दर्शन का आश्रय द्रव्य है, उस द्रव्य को द्रव्य पर दृष्टि करने से यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सब कुछ प्रकट होता है। तो उससे आत्मा ऐसा अलग... ऐसा अलग नहीं है, उसको इस पर्याय

का वेदन होता है, उससे शून्य अर्थात् पर्याय उससे कोई पृथक रह जाय और द्रव्य कुछ पृथक रह जाय, ऐसा नहीं है, उसको ऐसा अत्यंत भेद नहीं है।

वह पर्याय प्रकट हो उसे आत्मा का वेदन होता है। सम्यग्दर्शन का वेदन होता है, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र का भी आत्मा को वेदन है, वह निर्मल पर्याय का वेदन होता है। उसको जो कुछ साधना होती है, वह साधना कोई अन्य के लिये नहीं होती है। स्वयं आत्मा के स्वरूप की प्राप्ति करने के लिये होती है। वह साधना कोई व्यर्थ जाती नहीं है। उसे आत्मा का वेदन होता है और मोक्ष की पर्याय जो मुक्ति की पर्याय होती है, केवलज्ञान की पर्याय होती है, उस पर्याय को आत्मा का वेदन है – यह द्रव्यदृष्टि के विषय में नहीं है, द्रव्य(दृष्टि) का विषय... में यह द्रव्यदृष्टि के विषय में नहीं है – उस अपेक्षा से उसे पृथक कहने में आता है। ऐसा भेद है, अत्यंत भेद नहीं है।

उसे अत्यंत भेद ऐसा नहीं है कि उसका वेदन न हो, सम्यग्दर्शन प्रकट होता है, तब यह सम्यग्दर्शन का वेदन स्वानुभूति होती है, उस द्रव्य पर दृष्टि करने से सब प्रकट होता है, इसलिये वह शून्य है, उसे किसके लिये प्रकट करना कहने का नहीं है। द्रव्यदृष्टि के बल से सम्यग्दर्शन, फिर आगे वृद्धि होने पर मुनिदशा होती है, छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान में झूलता होता है, वह सब कुछ मुनिराज को भी वेदन है, यह छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान में भी साधकपर्याय है, अभी पूर्णता नहीं है। पूर्ण हो तब केवलज्ञान होता है, लेकिन द्रव्यदृष्टि में वह केवलज्ञान की पर्याय भी गौण होती है, मुक्ति की पर्याय भी नहीं है, कि द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से केवलज्ञान उपर दृष्टि नहीं है। मुक्ति की पर्याय पर दृष्टि नहीं है। सम्यग्दर्शन की पर्याय पर दृष्टि नहीं है। उसकी दृष्टि कहीं नहीं है। दृष्टि तो एक द्रव्य को ग्रहण करके सभी पर्याय को गौण करता है। जो सम्यग्दर्शन प्रकट होता है, वह सम्यग्दर्शन का विषय जो द्रव्य है, उस द्रव्य का द्रव्य विषय किया लेकिन उसकी पर्याय पर दृष्टि नहीं है। उसकी दृष्टि तो द्रव्य पर है। जो द्रव्यदृष्टि में कुछ आता नहीं है। पाँच ज्ञान के भेदों उदयभाव और उपशमभाव व क्षायिकभाव उन सभी के भेद उसमें आते नहीं है। वह क्षायिक की पर्याय प्रकट हो तो उसके उपर उसकी दृष्टि नहीं है। द्रव्यदृष्टि की द्रव्यदृष्टि में कुछ आता नहीं है। तो यह द्रव्यदृष्टि के जोर से ही सभी पर्यायें प्रकट होती है। पारिणामिकभाव उपर दृष्टि देने से सभी प्रकट होता है। द्रव्यदृष्टि के बल से सब कुछ प्रकट होता है और वह पर्याय को गौण करता है। द्रव्यदृष्टि पर्याय को गौण करता है और भी पर्याय उसके जोर से ही प्रकट होती है और उस पर्याय का वेदन होता है। जो दृष्टि द्रव्य का आश्रय करती है, वह दृष्टि पर्याय को गौण करती है, लेकिन ज्ञान सब कुछ आता है, उस पर्याय का वेदन भी होता है।

इसलिये यह सब कुछ व्यर्थ नहीं है। यह तो द्रव्यदृष्टि के बल में सभी बंध-मोक्ष के परिणाम भी जिस में नहीं है। केवलज्ञान भी जिसमें नहीं है, ऐसा कहा जाता है वह अब ठीक है। प्रत्येक पद पांच ज्ञान कोई पद केवलज्ञान का पद भी आत्मा को नहीं चाहिये। वह आता है और मोक्ष भी नहीं चाहिये अर्थात् कि मोक्ष की पर्याय पर दृष्टि नहीं है। केवलज्ञान पर दृष्टि नहीं है लेकिन द्रव्य पर ही दृष्टि है। इस दृष्टि के बल से यह सब कुछ गौण होता है, उसे निकाल दिया जाय फिर भी उसका वेदन आता है। उससे शून्य अर्थात् इतना शून्य नहीं कि उसका वेदन ही न हो। उसकी कोई अपूर्व वेदना होती है उसका कोई अनुपम वेदन होता है कि जो भाषा में न आये ऐसा वेदन सम्यग्दर्शन स्वानुभूति का होता है। पूर्ण हो वह पूर्ण वीतरागदशा में चारित्रदशा में आत्मा का तो यह अपूर्व अनुपम वेदन होता है। इसलिये यह चित्त पर्यायें ऐसी नहीं है कि तद्दन भेद हैं। ऐसा नहीं है।

श्रोता : माताजी ! एक प्रश्न है कि पूज्य गुरुदेवश्री के वचनामृत में आता है। माताजी! एक प्रश्न है कि पूज्य गुरुदेवश्री के वचनामृत में आता है 'मैं ही परमात्मा हूँ ऐसा निश्चय कर, मैं ही परमात्मा हूँ ऐसा निर्णय कर, मैं ही परमात्मा छुं ऐसा अनुभव कर।' तो उसमें निश्चय कर, निर्णय कर और अनुभव कर उसमें पूज्य गुरुदेवश्री क्या कहना चाहते है ? उसे कृपा करी समझाईये।

पूज्य बहिनश्री : गुरुदेव तो बारम्बार कहते थे तुम परमात्मा हो ऐसा निश्चय कर। स्वयं की अनादि से विभाव पर दृष्टि है, पर्याय पर दृष्टि है इसलिये तुम परमात्मा हो ऐसा तय कर। इस प्रकार बारम्बार गुरुदेवश्री ने तो बहुत स्पष्ट करके समझाया है कि तुम परमात्मा हो ऐसा निश्चय कर। तुम भगवान जैसा हो ऐसा तुम निश्चय कर। क्योंकि तुम अपने को भूल गये हो। तुम तो परमात्मा हो। इस पर्याय को पर्याय में तुम ठहर कर, यह विभावदशा में हूँ, विभावरूप हो गया और मैं शरीररूप हो गया और मैं मेरे में कोई शक्ति नहीं है ऐसा हो गयो किन्तु तुम परमात्मा हो अपने स्वभाव की आप पहिचान किजीये ऐसा गुरुदेवश्री का कहना था। बारम्बार कहेते थे कि तू परमात्मा है। भगवान को भगवान कहा है तुम परमात्मा हो गुरुदेवश्री बारम्बार कहते है कि वीतराग सर्वज्ञदेव की ध्वनि में आया है लाखों, करोडों देवों की उपस्थिति में भगवान ने कहा है कि तुम परमात्मा हो, तुम परमात्मा हो ऐसा नक्की कर... लेकिन भगवान आप परमात्मा हो – ऐसा नक्की करने दो, किन्तु भगवान परमात्मा कब नक्की होता है कि स्वयं परमात्मा है – ऐसा नक्की करें तो भगवान परमात्मा को पहिचानोगें। स्वयं को पहिचाने वह भगवान को पहिचाने। भगवान को पहिचाने वह स्वयं को पहिचानता है, इसलिये तुम परमात्मा हो ऐसा नक्की कर।

इस प्रकार गुरुदेवश्री बारम्बार कहते थे और उसका तुम अनुभव किजीये। उसका अनुभव करने से परमात्मा कैसे है उसकी तुझे अनुभूति होगी। अनंतकाल से निगोद में अनंता भव किये। निगोद में अनंतबार अनंत भव निगोद के किये, शेष चारों गति के भवों किये उसमें तुम स्वयं को भूल गया तेरी परमात्मा की शक्ति तो ऐसी की ऐसी है। तेरा सामर्थ्य ऐसा का ने ऐसा ही है।

तुम अनंत शक्ति से परिपूर्ण दिव्यमूर्ति देव हो उसकी तुम पहिचान करों। ऐसा निर्णय करना उसका यथार्थ निश्चय करके और पश्चात् तुम उसका अंदर से वेदन करके विकल्प से पृथक होकर और उसका अनुभव किजीये। तब तुझे मुक्तिनो मार्ग प्रकट होगा और ऐसी मुक्ति का मार्ग प्रकट होने से यह परमात्मा का स्वरूप तुझे पूर्ण हो तो पूर्ण परमात्मा होगा। तुं शक्तिरूप से परमात्मा है – ऐसा नक्की करोगें, तो उस प्रकार का पुरुषार्थ उत्पन्न होगा। नक्की किये बिना पुरुषार्थ होता नहीं है। जैसे स्फटिक स्वभाव से निर्मल है। वह स्फटिक कोई मलिन हुआ नहीं है। सोना और पाषाण दोनों साथ में होता है फिर भी सोना तो सोना ही है ऐसे तुम स्वयं परमात्मा हो। पर के साथ में रहा विभाव अनंता विभाव अनेक जाति का हुआ ऐसा अनेक जाति के अध्यवसाय हुओ तो भी तुम तो ऐसे के ऐसे हो। इसलिये तुम ऐसा यथार्थ निश्चय किजीये।

पूज्य बहिनश्री : दोनों एक ही है। स्वभाव से परिपूर्ण है और परमात्मा है इस परमात्मा को भगवान तुम स्वयं भगवान हो ऐसा कहते है और तू परिपूर्ण है यह स्वभाव अपेक्षा से तो परिपूर्ण है भगवान जैसा है दोनों में कहने का आशय एक ही है। द्रव्य अपेक्षा से तुम परिपूर्ण हो और भगवान को तुम बाह्य देखते रहते हो तुम स्वयं भगवान हो। ऐसे तुम भगवान को पहिचानों। भगवान की भक्ति करने पर भगवान कैसे है? भगवान द्रव्य-गुण-पर्याय से उन भगवान का क्या स्वरूप है

ऐसा विचार करने पर तुन अपना स्वरूप को पहिचानो तुम भगवान जैसे हो। उनका कहने का आशय एक ही है। स्वभाव की ओर से कहते है यह परमात्मा की ओर से कहते है। शेष कहने का आशय एक ही है।

श्रोता : परमात्मा में प्रकटपना होता है और स्वभाव में शक्तिपना है उसमें से प्रगट करने का है ऐसा किस प्रकार से है ? उसमें पृथकता है, भिन्न्ता है ? परमात्मापना जो है कि तुम परमात्मा हो अर्थात् कि व्यक्ति अपेक्षा तेरी परिपूर्ण शक्ति कैसे स्थिर रहती है ऐसा तुझ में सामर्थ्य है, ऐसा दर्शाना है ?

पूज्य बहिनश्री : व्यक्ति से... उसको तो शक्ति से परमात्मा हो ऐसा और तुम परमात्मा बन सकते हो ऐसा कहना है। वर्तमान व्यक्ति है ऐसा नहीं है।

तुम वर्तमान शक्तिरूप तेरा स्वभाव शक्ति में परमात्मा है और तुम्हारे में ऐसा हो सकने का सामर्थ्य है। अनंत शक्ति से परिपूर्ण तेरी शक्ति है उसे तुम पहिचानो और उसे प्रकट करो ऐसा कहने का है। भूमिका अनुसार उसे जो शुद्धि प्रकट हुई शुद्धि उसकी अल्प ही है पाँचवाँ गुणस्थानवाले को, भी जो विकल्पदशा में वेदन अपेक्षा से अंतर है।

श्रोता : निर्विकल्प में तो सिद्ध भगवान जैसा ही कहा है।

पूज्य बहिनश्री : सिद्ध भगवान के अंश का अनुभव करते है।

श्रोता : क्या निर्विकल्प आनंद चौथे गुणस्थान में अधिक है जब शुद्धोपयोग में हो; पाँचवे से... (जब चाहे) पाँचवाँवाला (विकल्पात्मकदशा में) भले... हो?

पूज्य बहिनश्री : उस निर्विकल्पदशा में आनंद है ... आनंद है, और सविकल्पदशा में उसे उस प्रकार की भूमिका होती है। उसको शुद्धि अधिक, निर्मलता भी अधिक है और उस समय वेदन निर्विकल्पदशा का है। तो भी उसकी शुद्धि की वृद्धि चौथे गुणस्थान से निर्मलता की वृद्धि हो तब विशेष आगे जा सकते है। लेकिन विकल्प के वेदन अपेक्षा से निर्विकल्प अपेक्षा में अंतर है।

श्रोता : चौथे में और चौथे में निर्विकल्प व सविकल्प में अंतर है। पाँचवाँ की सविकल्पदशा ओर चौथे का निर्विकल्प इन दो में आनंद का भोक्तृत्व किसकी अधिक होता है?

पूज्य बहिनश्री : निर्विकल्पदशा में आनंद पृथक (दूसरे प्रकार का) ही होता है उसके साथ में उसकी तुलना नहीं की जा सकती। सविकल्प और निर्विकल्प की तुलना करता हूँ यह तुलना उसके साथ सविकल्प का पाँचवाँ गुणस्थान में शांति और चौथे गुणस्थान का निर्विकल्प आनंद उसके साथ समानता (मेल) नहीं किया जा सकता। उसका तुलना सविकल्प-सविकल्प साथ किया जाता है। निर्विकल्प-सविकल्प की तुलना नहीं की जाती। सविकल्प चौथे गुणस्थान और पाँचवें गुणस्थान में सविकल्पदशा उसकी शुद्धि निर्मलता शांति, समाधि अधिक है। सविकल्पता के साथ सविकल्प की तुलना की जाए। निर्विकल्प के साथ निर्विकल्प की तुलना की जाती है। (बहुत अच्छा) वह निर्विकल्प द्वारा हुआ अर्थात् उसका सविकल्प निर्विकल्प जैसा हो गया तो फिर निर्विकल्प कोई पृथक नहीं रहा। निर्विकल्प स्वानुभूति का कोइ पृथक

प्रकार ही न रहा कि पाँचवें गुणस्थान का सविकल्प और चौथे गुणस्थान का निर्विकल्प दोनों समान है ऐसा दर्शाता है। तो निर्विकल्पदशा कोई पृथक रही ही नहीं।

विकल्प साथ में विद्यमान है और जो वेदन है विकल्प है – वह राग है, राग की आकुलता और उस आकुलता का वेदन और उसकी शांति दोनों का वेदन साथ में हो रहा है। वह उसे अकेला वेदन हो रहा है उसमें अंतर है। अकेले स्वयं का आनंद वेदन में आ रहा है जिस में आकुलता ऐकदम अबुद्धिपूर्वक की उसके ख्याल में भी नहीं है आकुलता का, मात्र निराकुलता मात्र आनंद का वेदन करते है और सविकल्पता में चाहे शांति अधिक हो, उंची भूमिका हो लेकिन आकुलता और निराकुलता दोनों साथ में मिश्रित है। वह मिश्रित वेदन और अकेला वेदन उसमें अंतर है।

श्रोता : वहाँ ऐसा कहना है कि दोनों की जाति ही पृथक् है।

पूज्य बहिनश्री : दोनों पृथक ही है उसकी जाति पृथक है यह मिश्रित है और वह अकेला है, अभेद है। विभाव स्वभाव अपेक्षा से उसका भेद हो ऐसा भेद नहीं लेकिन वह निर्विकल्प सविकल्प(दशा) राग की ओर से देखे तो पृथक है। (श्रोता : बहुत सुंदर)

पूज्य बहिनश्री : निर्विकल्पदशा कहाँ चली गई, पृथक देश में चली गई, आत्मा में डूब गया, आनंदवृत्ति में अंदर लीन हो गया वह दशा और सविकल्पदशा जो आकुलता के साथ में दिखती है उसमें अंतर है। उसके साथ (मिंढवणी) तुलना की जा सकती नहीं है।

चाहे भूमिका अल्प हो अर्थात् उसकी भूमिका में वृद्धि हो गई है ऐसा नहीं है। लेकिन उसके वेदन में उस समय और समयरूप क्या है वेदन में अंतर है।

प्रशममूर्ति भगवती मात की जय हो,

सम्यक्त्वमूर्ति परम भगवती मात की मंगल वाणी की जय हो।

अनंतानंत उपकारी कहानगुरुदेव की जय हो।

ट्रेक-७७

समाधान :- .. स्वीकार किया तो सही, अंतरमेंसे उसे शुद्ध पर्याय प्रगट हो तो उसने स्वीकार किया है। त्रिकाल शुद्ध द्रव्य स्वयं सर्व प्रकारसे शुद्ध है। उसका स्वीकार किया है। अन्दर वैसी उस प्रकारकी अंतरमेंसे प्रतीत प्रगट हो, उसकी शुद्ध पर्याय प्रगट हो, उसकी स्वानुभूति प्रगट हो तो उसने वास्तविक रूपसे स्वीकार किया है। नहीं तो उसने बुद्धिसे विचार करके स्वीकार किया है।

सत्य स्वीकार तो उसे कहते हैं कि त्रिकाली द्रव्य पर बराबर यथार्थ श्रद्धा हो कि मैं तो अनादि अनन्त शुद्ध, सर्व प्रकारसे शुद्ध हूँ। पारिणामिकभाव अनादि अनन्त शुद्ध है। द्रव्य-गुण-पर्याय सर्व प्रकारसे शुद्ध है। वैसे प्रगट पर्यायमें शुद्धता है। सर्व प्रकारसे शुद्ध है, ऐसी प्रतीत उसे दृढ़ हो और उस प्रकारकी परिणति प्रगट हो तो उसने स्वीकार किया है। उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है। ज्ञानमें सब जानता है। दृष्टि द्रव्य पर जाती है और ज्ञायककी भेदज्ञानकी परिणति, ज्ञायककी ज्ञायकधारा प्रगट हो, स्वानुभूति हो तो उसने स्वीकार किया है।

द्रव्यकी दृष्टिमें द्रव्य, गुण, पर्यायका भेद करके नहीं जानता है। वह तो एक द्रव्य पर दृष्टि रखी है। उसमें उसे सब साथमें आ जाता है। बाकी उसे भिन्न नहीं है। भेद करके दृष्टि भेद नहीं करती। ज्ञानमें सब जानता है।

मुमुक्षु :- ज्ञान भी वर्तमानमें अभेद हो जाता है उस कालमें तो।

समाधान :- स्वानुभूतिके कालमें तो ज्ञान अभेद यानी ज्ञान स्वयंको जानता है, ज्ञान अपने गुणोंको जानता है, अपनी पर्यायको जानता है। उपयोग जो बाहर जाता था वह नहीं जाता है। बाकी स्वयं स्वको जाने, अपने गुणोंको जाने, अपनी पर्यायोंका जानता है। दृष्टि अभेद है, परन्तु ज्ञान तो सब अभेद-भेद दोनोंको जानता है। द्रव्य स्वयं अनादि अनन्त है। उसमें गुणका भेद वस्तुभेद (रूप) नहीं है, परन्तु लक्षणभेद है। उसे पर्यायमें अंश-अंशीका भेद है। वह जैसा है वैसा द्रव्यका स्वरूप ज्ञान बराबर जानता है।

स्वानुभूतिके कालमें अभेद हो जाता है इसलिये वह कुछ जानता नहीं है, ऐसा नहीं है। गुण, पर्याय आदि ज्ञान कुछ नहीं जानता है, ऐसा नहीं है। स्वानुभूतिके कालमें

सब जानता है। स्वानुभूतिमें स्वयं द्रव्यको अभेद जानता है, गुणोंका भेद जानता है, उसका वेदन स्वानुभूतिमें जानता है, शुद्ध पर्यायको जानता है। ज्ञान सब जानता है। ज्ञान पोतानी अनुभूतिकी पर्यायको ज्ञान न जाने तो दूसरा कौन जाने? ज्ञान सब जानता है। अभेद हो जाये इसलिये कुछ जानता नहीं है, उसकी वेदनकी पर्यायको भी नहीं जानता है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- जानता हुआ अंतर आनंदके वेदनमें मग्न हो जाता है।

समाधान :- जानता हुआ। विकल्प नहीं है, निर्विकल्प है। आकुलता नहीं है, राग नहीं है। शांतदशा, शांतिमय दशा, आनंदमय दशाको जानता हुआ आत्मामें लीन है।

मुमुक्षु :- टोडरमलजी साहब फरमाते हैं कि प्रदेशका तो प्रत्यक्षपना होता नहीं, अनुभवके कालमें। मात्र रागरहित दशा अंतरमें प्रगट हुयी है, उस रागरहित दशामें ही आनंदका वेदन करके ज्ञान अन्दर रुक जाता है।

समाधान :- प्रदेशको जान नहीं सकता। (उसका कोई) प्रयोजन नहीं है। ज्ञान स्वयं स्वानुभूतिका वेदन करता है। राग छूट गया, (फिर भी) स्वयंका अस्तित्व है न? शून्य नहीं हो गया। राग छूट गया, परन्तु आत्मा स्वयं तो खड़ा है। निर्विकल्प दशामें आत्मा खड़ा है। वीतरागी दशामें राग छूट गया इसलिये अन्दरसे आत्माकी वीतरागी दशा प्रगट होती है। आंशिक राग छूट गया, पूर्ण वीतराग नहीं है, परन्तु आंशिक वीतरागी दशा है। इसलिये अपना वेदन है। अपनी वेदनकी दशाको जानता है। प्रत्यक्ष ज्ञान भले नहीं है।

प्रत्यक्ष ज्ञान केवलज्ञानीको है। प्रदेश आदि सब केवलज्ञानी जानते हैं। प्रत्यक्ष नहीं होने पर भी स्वानुभव प्रत्यक्ष है। मति-श्रुत परोक्ष होने पर भी उसकी स्वानुभूति प्रत्यक्ष है। वेदन अपेक्षासे प्रत्यक्ष है। वह किसीको पूछने नहीं जाना पड़ता। स्वानुभूति वेदन अपेक्षासे प्रत्यक्ष है। राग छूट गया इसलिये शून्य हो गया, ऐसा नहीं है। राग छूट गया तो अंतरमें जो आत्मा वीतरागी स्वरूप, निर्विकल्पस्वरूप था, ऐसे आत्माकी स्वानुभूति प्रगट हुयी। अद्भूत अनुभव दशा, सिद्ध जैसा अंश प्रगट होता है। जागृत दशा है। राग छूट गया इसलिये शून्य दशा नहीं है, जागृत दशा है।

मुमुक्षु :- जड़ जैसा नहीं हो गया।

समाधान :- हाँ, जड़ जैसा नहीं हो गया है। बाहरका जानना छूट गया और राग छूट गया इसलिये जड़ जैसा हो गया, कुछ जानता नहीं, ऐसा नहीं है। अपना वेदन स्वयंको प्रत्यक्ष है। केवलज्ञानी पूर्ण प्रत्यक्ष हैं। स्वयं स्वयंको जाने, अन्यको जाने, उनका ज्ञान प्रत्यक्ष हो गया है। क्योंकि उनको मनके विकल्प, रागका अंश मूलमेंसे

क्षय हो गया है। (नीचेकी दशामें) रागका अंश मूलमेंसे क्षय नहीं हुआ है, परन्तु अमुक अंशमें छूट गया इसलिये जागृत दशा है। स्वानुभूतिकी दशा है। स्वयं स्वयंकी अनुपम अद्‌भूत दशाको वेदता है कि जिसे कोई बाह्य उपमा नहीं दी जा सकती। चैतन्यकी स्वानुभूतिका कोई बाह्य उपमा लागू नहीं पड़ती। अद्‌भूत अनुपम दशा है।

मुमुक्षु :- ... प्राप्त कर ले और मनुष्य प्राप्त न करे तो मनुष्यमें ज्यादा बुद्धि हो तो ज्यादा अटकता है?

समाधान :- ऐसा कुछ नहीं है कि मनुष्य ज्यादा अटके। इस पंचम कालमें ऐसी योग्यतावाले जीव है कि उन्हें दुर्लभ हो पड़ा है। मनुष्य ज्यादा अटके ऐसा नहीं है। वर्तमानमें तो मेंढक भी नहीं कर सकता है। सबको दुर्लभ हो गया है। और मनुष्योंको दुर्लभ हो गया है।

चतुर्थ काल जो सुलभ काल था, जीवोंकी पात्रता अधिक उग्र थी। ऐसी पात्रतावाले जीव थे। साक्षात् भगवानका योग था। साक्षात् केवलज्ञानीका योग था, चतुर्थ काल था और जीव भी ऐसी तैयारीवाले थे। इसलिये कितने ही मनुष्योंको तो होता है, परन्तु तिर्यंच जैसोंको भी होता है, ऐसा काल था। मनुष्योंको क्षण-क्षणमें जल्दी हो जाता था, परन्तु मेंढक जैसे तिर्यंचोंको भी होता था। वैसा वह काल सुलभ काल (था) और ऐसी पात्रतावाले जीव थे। यहाँ जो जन्म लेते हैं, वह ऐसी ही पात्रता लेकर आते हैं कि जिन्हें सब दुर्लभ हो जाता है। इसलिये मनुष्योंमें उतनी तैयारी नहीं है और तिर्यंचोंमें तो तैयारी तो बिलकुल नहीं दिखाई देती। तिर्यंचोंमें समझना अत्यंत कठिन है। मनुष्योंको दुर्लभ है, तिर्यंचोंको दुर्लभ है। चतुर्थ कालमें अनेक मनुष्योंको होता था और तिर्यंचोंको भी होता था। सबको होता था।

... पूरा होता है। चारित्र पूर्ण होता है, तब पूर्ण केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है।

मुमुक्षु :- मोक्षमार्ग कहाँ-से शुरू होता है?

समाधान :- मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शनसे शुरू होता है।

मुमुक्षु :- आज सुबह २३२ गाथा गुरुदेवके प्रवचनमें चली थी। उसके अंतर्गत आया था कि...

समाधान :- सम्यग्दर्शनकी अपेक्षासे मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन जब हुआ तब मोक्षमार्ग शुरू होता है। चारित्रकी अपेक्षासे केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है, पूर्ण बादमें होता है। अंश तो पहले प्रगट होता है। पहले अंश प्रगट होता है, पूर्णता चारित्र होवे तब होती है। मार्ग शुरू हो जाता है। और केवलज्ञानकी अपेक्षासे चारित्रकी अपेक्षासे मोक्षमार्ग मुनिकी दशामें होता है।

रुचि तो स्वयंको करनी पड़ती है। बाहरकी रुचि लगी है। आत्माकी महिमा नहीं

आती, आत्माको पीछाननेका विचार नहीं करता, आत्माकी महिमा नहीं आती है, रुचि कहाँ-से लगे? महिमा सब बाहरकी है।

मुमुक्षु :- कोशिश तो बहुत करते हैं।

समाधान :- कोशिश करता है तो भी पूरी कोशिश नहीं होती। कारण थोड़ा देता है, कार्य कहाँ-से आवे?

मुमुक्षु :- इस जीवको आत्माकी महिमा कैसे आये? आत्माका विश्वास कैसे बैठे?

समाधान :- विश्वास (आ सकता है), आत्माके स्वभावको पीछाने तो विश्वास (आता है)। बाहर देखे तो बाहर कहाँ (है)? भीतरमें देखे तो कहीं शांति नहीं है, आकुलता-आकुलता लगती है। आकुलता लगे तो सुख कहाँ है? सुख-सुख करता है, सुख बाहरसे नहीं मिलता। सुख तो भीतरमें-आत्मामें होता है। आत्मामें सुख होता है। ऐसी प्रतीत करनी चाहिये, ऐसा निर्णय करना चाहिये, स्वभावको पीछानना चाहिये। सब नक्की करना चाहिये, तब हो सकता है। बाकी बाहर तो बहुत करता है, परन्तु भीतरमें आकुलता लगती है। तो आकुलता आत्माका स्वभाव नहीं है। शान्ति, सुख आत्माका स्वभाव है। उसका विचार करके निर्णय करना चाहिये।

मुमुक्षु :- सुख स्वभावको देखे तब सुखकी महिमा आये। संसारसे दुःख लगे...

समाधान :- आत्माकी रुचि लगे, आत्मामें सब पड़ा है, आत्मा अनुपम तत्त्व है, आत्मा अद्भूत तत्त्व है। जगतसे, विभावसे भिन्न आत्मा कोई अद्भुत अनुपम तत्त्व है। उसका आश्चर्य लगना चाहिये, उसकी महिमा लगनी चाहिये, तब हो सकता है।

मुमुक्षु :- एक-एक बोलमें बहुत आया है। बहिनश्रीके वचनामृतमें आपकी किताबमें एक-एक बोलमें महिमा भरी हुयी है।

समाधान :- ऐसी स्वानुभूति, सम्यग्दर्शन, आत्माकी अपूर्वता, अद्भुत, अनुपम... सम्यग्दृष्टि चक्रवर्ती गृहस्थाश्रममें होवे तो भी आत्माकी स्वानुभूति होती है। बादमें उसकी पूर्णता करनेके लिये मुनिदशा (आती है)। चारित्र कम है तो पूरी लीनता नहीं होती है। लीनता मुनिदशामें होती है। इसलिये मोक्षमार्ग वहाँसे शुरू होता है। सम्यग्दर्शनकी अपेक्षासे पहले शुरू हो जाता है। शुरूआत तो वहाँसे होती है। सम्यग्दर्शनमें भवका अभाव हो जाता है। आत्मा अनुपम अपूर्व है, उसकी महिमा आवे, उसकी लगनी लगे तब हो सकता है।

मुमुक्षु :- सर्व समर्पण करे तब आत्मा मिले। ...

समाधान :- हाँ। इधर-ऊधर कहीं-कहीं रुक जाता है, परकी महिमा आती है, आत्माकी महिमा आती नहीं। आत्माको सर्व समर्पण कर दे। बस, आत्मा ही कोई अपूर्व अनुपम वस्तु है। उसको बतानेवाले गुरुदेव तो अपूर्व वाणी बरसा गये हैं।

मुमुक्षु :- उनका उपकार तो जीवनमें कोई भूला नहीं सकता।

समाधान :- हाँ, बरसों तक वाणी बरसायी, ऐसा अपूर्व मार्ग दर्शाया। आत्माका अपूर्व मुक्तिका मार्ग (दर्शाया)। सबको जागृत किया। पूरे हिन्दुस्तानमें सबको जागृत किया। रुचि बाहरमें क्रियामें थे। भीतरमें मोक्षका मार्ग है। गुरुदेवने बहुत समझाया है।

मुमुक्षु :- बहिनश्री! कर्ताबुद्धि कैसे टूटे? दिन भर करुँ-करुँ कर्ताबुद्धि कैसे टूटे?

समाधान :- कर्ताबुद्धि, ज्ञायकको पीछने तब कर्ताबुद्धि टूटती है। मैं ज्ञाता ही हूँ। ज्ञाताका विश्वास आना चाहिये, ज्ञाताकी प्रतीत आनी चाहिये कि मैं ज्ञायक ही हूँ। मैं तो जाननेवाला, मैं तो उदासीन ज्ञाता ही हूँ। मैं परको कर नहीं सकता। पर तो स्वतंत्र द्रव्य है। पुद्गल, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय स्वतंत्र है। उसके गुण-पर्याय सब स्वतंत्र है। मैं किसीको बदल सकूं ऐसी शक्ति मेरेमें नहीं है। सबके पुण्य-पापके उदयसे सब चलता है। तो भी मैं करुँ-मैं करुँ करता है।

मैं तो ज्ञायक हूँ। ज्ञायककी प्रतीत आवे, ज्ञायकका विश्वास आवे, तब हो सकता है। कर्ताबुद्धि टूटे... मैं इतना सत्य परमार्थ कल्याण है कि जितना यह ज्ञान है। ज्ञायकमें संतुष्ट हो, उसमें तृप्त हो, उसमें तू अन्दर देख, अनुपम सुख प्रगट होगा। ज्ञानमात्र आत्मामें संतुष्ट हो जा।

मुमुक्षु :- सत्संग, समागममां महत्त्व श्रीमद् राजचंद्रजी बताते हैं, उस पर..

समाधान :- अनादि कालसे अपना पुरुषार्थ मन्द है तो बाहर असत्संगमें ऐसे परिणामकी असर... सत्संगमें यथार्थ विचार करने, सत्य तत्त्व समझनेका योग मिल, सच्ची वाणी मिले, इससे विचार करनेका स्वयंको प्रयत्न हो। यह सत्संगका महत्त्व है। असत्संगमें तो विचार (नहीं चलते हैं)। ऐसे भी पुरुषार्थ मन्द है, जहाँ-तहाँ विचार चले जाते हैं, निर्णय नहीं हो सकता है। इसलिये जिन्होंने मार्ग समझा है, जो मार्ग गुरुदेव दर्शाते थे, यथार्थ बात करते हैं, परिणाम उसमें जाये तो विचार करे, रुचि बढ़े, ऐसा सब होता है। मैं आत्माको कैसे प्राप्त करुँ? ऐसा तो सत्संगमें हो सकता है।

मुमुक्षु :- अन्दरमें तड़प लगे तो ऐसे सत्संगमें जायेगा।

समाधान :- हाँ, स्वयंको तड़प लगे, लगनी लगे तो सत्संगमें जायेगा। नहीं तो कुटुम्बमें, व्यापार-धंधामें परिणाम चला जाता है। गुरुदेवने बहुत दिया है।

मुमुक्षु :- वे तो अद्भुत कर गये हैं! अभी भी देखे तो कण-कणमें देखकर आँसु बहते हैं। गुरुदेवने चारों ओरसे कितनी करुणा पूरा भारत ...

समाधान :- ४५-४५ यहाँ रहकर.. कण-कणमें गुरुदेव। स्वाध्याय मन्दिरमें विराजते थे। वे विराजते थे तब सब कुछ अलौकिक था।

मुमुक्षु :- बहुत दे गये हैं, गुरुदेव तो दे गये, अब पुरुषार्थ करे यह जीव और

सुधरे...

मुमुक्षु :- आत्माकी अनुभूतिका स्वाद कैसा है?

समाधान :- आत्माकी अनुभूतिका स्वाद, उसकी कोई उपमा नहीं हो सकती है। आत्मानुभूतिकी कोई उपमा नहीं है। वह तो अनुभव तत्त्व है। जड़ पदार्थकी उपमा चैतन्यको मिल नहीं सकती। विभावका, कोई रागका, कोई देवलोकके देवोंका या किसीकी भी उपमा उसे लागू नहीं पड़ती। वह तो अनुपम है। चैतन्यतत्त्व कोई आश्चर्यकारी तत्त्व है। उसका स्वाद अनुपम, उसका ज्ञान अनुपम, अगाध ज्ञानसे भरपूर, एक समयमें लोकालोकको जाननेवाला, ऐसी अनंत शक्ति (है)। अनन्त गुणोंसे भरपूर अद्भुत अनुपम अनन्त गुणोंसे भरपूर (है)। वह बोलनेमें कोई उपमामें नहीं आता है।

मुमुक्षु :- जिसने स्वाद चखा वही जाने, दूसरा नहीं जान सकता।

समाधान :- उसकी उपमा नहीं हो सकती है। वह तो अनुपम अमृत स्वाद। अनुपमकी उपमा नहीं होती। विकल्प छूट गया, निर्विकल्प स्वरूप आत्मामें लीन हो गया, उसका स्वाद वही जानता है। जगत-दुनियासे कोई अलौकिक दूसरी दुनियामें चला जाता है।

मुमुक्षु :- अलौकिक जीवन है ज्ञानीका!

समाधान :- हाँ, अलौकिक है।

मुमुक्षु :- अज्ञानी थोड़ी पहचान सकता है।

समाधान :- ... स्वानुभूति हो सकती है, सम्यग्दर्शन हो सकता है।

मुमुक्षु :- इस जीवको भावसंवर कैसे प्रगट हो?

समाधान :- भावसंवर तो.... सबका एक ही मार्ग है। सबका एक ही है। जब ज्ञायकको पीछाने तब संवर होता है। सबकी एक ही बात है। मुक्तिका मार्ग एक ही है। संवरका मार्ग, निर्जराका मार्ग, सम्यग्दर्शन, सबका मार्ग... जो मार्ग सम्यग्दर्शनका, वही मार्ग चारित्रका, सब एक ही मार्ग है, दूसरा नहीं है। एकमें कोई दूसरा मार्ग और दूसरेमें दूसरा मार्ग ऐसा नहीं है।

आत्मा ज्ञायकको भेदज्ञान कर (पहचाने)। 'भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन'। जो सिद्ध हुए वे भेदविज्ञानसे हुए, नहीं हुए वे भेदविज्ञानके अभावसे नहीं हुए। एक ही मार्ग है। भेदज्ञान करके आत्माको पीछाने, द्रव्य पर दृष्टि करे। बस, ज्ञायकको भिन्न जाने, ज्ञायककी भिन्न परिणति (प्रगट करे)। क्षण-क्षणमें भिन्न (पड़े), खाते-पीते, निद्रामें, स्वप्नमें भिन्न रहे। स्वानुभूति प्रगट होवे तब भावसंवर होता है। इसमें विशेष लीनता होवे तो विशेष निर्जरा होती है। सम्यग्दर्शन (होनेके बाद) विशेष लीनता होवे तब चारित्रदशा होती है। मार्ग तो एक ही है। दूसरा कोई मार्ग नहीं है। इसका दूसरा, इसका दूसरा

(ऐसा नहीं है)। एक आत्माको पीछाने (उसमें) सब आ जाता है। और सबको पीछाने, आत्माको पीछाने नहीं तो कुछ जाना नहीं। एक आत्माको पीछाने उसमें सब आ जाता है। आत्माको जाना उसने सब जाना और आत्माको नहीं जाना तो ग्यारह अंगका ज्ञान हुआ तो भी कुछ नहीं हुआ।

मुमुक्षु :- आत्मा सुखी तो नहीं हुआ।

समाधान :- नहीं हुआ। आगमज्ञान (करे), परन्तु उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि ज्यादा खूब जाने तो मुक्तिका मार्ग हो सकता है। अमुक प्रयोजनभूत जाने तो भी आत्माका स्वभाव प्रगट होता है। आगमज्ञान होता है। भगवानकी वाणी, भगवानने क्या कहा है, शास्त्रमें क्या आता है, आगमज्ञान आता है। विशेष जाने तो अच्छा है, थोड़ा जाने तो भी हो सकता है।

शिवभूति मुनि कुछ जानते नहीं थे। एक शब्दका ज्ञान भी भूल जाते थे। मारुष, मातुष। राग-द्वेष नहीं करनेका गुरुने कहा तो वह भी भूल गये। मासतुष हो गया। उसका भाव समझ लिया। औरत दाल और छीलका अलग करती थी। ऐसा मेरे गुरुने कहा कि आत्मा भिन्न है और यह विभाव भिन्न है। ऐसा भेदज्ञान करके अंतरमें ऊतर गये। मूल प्रयोजनभूत तत्त्वको जाने।

प्रशममूर्ति भगवती मातनो जय हो! माताजीनी अमृत वाणीनो जय हो!

श्री आदिनाथ दिगंबर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, सोनगढ़

शुक्रवार, **19** जनवरी **2024** से शुक्रवार, **26** जनवरी **2024** तक

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुंबई